श्री हरि:

जीवनोपयोगी प्रवचन

स्वामी रामसुखदास

प्रकाशक
बद्रीप्रसाद गुप्ता, प्राध्यापक (सेवा निवृत्त)
सी-६४, लालकोठी मार्ग,
बापूनगर,
जयपुर-३०२०१५

पुस्तक प्राप्ति स्थान :
गीता रामायण प्रचार समिति,
३४, बुलियन बिल्डिंग,
हल्दियों का रास्ता, जौहरी बाजार,
जयपुर-३०२००३

प्रथम संस्करण ५,०००
मूल्य रु० १.५०
१८ अप्रैल, १९८३

श्री हरि :

नम्र निवे न

प्रस्तुत पुस्तक मे पूज्यवर स्वामीजी श्री रामसुखदासजी महाराज द्वारा दिये गए जीवनोपयोगी कुछ प्रवचनो का सग्रह है। ये प्रवचन भगवत्प्राप्ति की ओर अग्रसर होने के अभिलाषी सत्सगियो एव साधको के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इनमे गूढ तत्वो को बडी सरल रीति से समझाया गया है। पाठको से निवेदन है कि इन प्रवचनो का अध्ययन एव मनन करके इनसे लाभ उठाए।

नववर्ष, विनीत
चैत्र शुक्ला १, २०४० शक

विषय-सूची

श्री हरि

व जीवन का लक्ष्य

हम विचार करके देखते है तो स्पष्ट होता है कि केवल मनुष्य ही परमात्म प्राप्ति का साधक है। जैसे बाल्यावस्था मे ब्रह्मचर्याश्रम है, वह केवल पढाई के लिये है। इसी तरह से ८४ लाख योनियो मे मनुष्य शरीर ब्रह्म विद्या के लिये है। केवल ब्रह्म विद्या की पढाई के लिये ही मनुष्य शरीर है। क्योकि और जगह इसका मौका नही है, न वह योग्यता है, न कोई अवसर है। अन्य योनियो मे विवेक नही होता। देवताओ मे समझने की ताकत है, परन्तु वहा भोग बहुत हे। भोगी आदमी परमात्मा मे नही लग सकता। जहा भी देखो, ज्यादा धनी आदमी सत्सग मे नही लगते। जो बहुत गरीब है, जिनके पास खाने-पीने को नही है, वे भी सत्सग मे नही लगते हैं। उन्हे रोटी--कपडे की चिन्ता रहती हे। उसी तरह नरको के जीव बहुत दु खी हैं। बेचारे उनको तो अवसर ही नही है। देवता लोग भोगी हैं, उनके पास बहुत सम्पत्ति है, वैभव है, पर वे परमात्मा मे नही लगते, क्योकि सुख--भोग मे लगे हुए है, वही उलझे हुए है। तो मनुष्य शरीर ऐसा बीच का है जो परमात्मा की प्राप्ति मे लग सकता है। उसमे योग्यता है। भगवान ने अधिकार दिया है। मनुष्य शरीर की महिमा बहुत ज्यादा है, देवताओ से भी अधिक है।

देवताओ का शरीर हमारी अपेक्षा बहुत शुद्ध होता है। हम लोगो का शरीर बडा गन्दा है। जैसे कोई सूअर हो और

वह मैले मे भरा हुआ हो। यदि वह हमारे पास आ जाता है तो उसको छूने का मन नही करता, दुर्गन्ध आती है। ऐसे ही हम लोगो के शरीर से देवताओ को दुर्गन्ध आती है। इतना दिव्य शरीर है उनका। हमारे शरीर मे पृथ्वी तत्त्व की प्रधानता है। देवताओ के शरीर मे तेजस-तत्त्व की प्रधानता है। परन्तु परमात्मा की प्राप्ति का अधिकार जितना मनुष्य शरीर को मिलता है, इतना उनको नही मिलता। इस वास्ते मनुष्य-शरीर की महिमा है।

उत्तरकाण्ड मे श्री काकभुशुण्डिजी से गरूड जी प्रश्न करते है कि सबसे उत्तम देह कौनसा है? तो कहा मनुष्य शरीर सबसे उत्तम है क्योकि "नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही"। चर-अचर सब जीव इस मनुष्य शरीर की याचना करते है, माग रखते है। ऐसा कहकर आगे कहा—

> नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी।
> ज्ञान विराग भगति सुभ देनी॥ (मानस ७/१२०/५)

तो मनुष्य देह नरक, स्वर्ग और अपवर्ग (मोक्ष)—ये तीन देने वाली है। इसके सिवाय परमात्मा का ज्ञान इस शरीर मे हो सकता है। संसार मे वैराग्य हो सकता है और भगवान की श्रेष्ठ भक्ति इसमे हो सकती है। इस शरीर मे ये ६ बात बताई। मनुष्य शरीर एक बड़ा जंक्शन है। इस पर चाहे जिस तरफ आप जाओ, गाड़ी मिलती है। मनुष्य जिस तरफ जाना चाहे उस तरफ जा सकता है। ऐसी मनुष्य शरीर की महिमा है। इस महिमा को कहते हुए पहले ही नाम लिया—नरक, स्वर्ग, अपवर्ग नसैनी। नरको मे जा सकते है—यह

महिमा है कि निन्दा ! मनुष्य शरीर ऐसा है, जिसमे नरक मेल सकते है—तो यह निन्दा हुई । इससे तत्त्व क्या निकला ? ऊँची से ऊँची और नीची से नीची चीज मिल सकती है, इस मानव शरीर से । यह महिमा है ।

वास्तव मे महिमा है शरीर के सदुपयोग की । इसका उपयोग ठीक तरह से किया जाय तो भगवान की श्रेष्ठ भक्ति मिल जाय, मुक्ति मिल जाय, वैराग्य मिल जाय, सब कुछ मिल जाय । ऐसी कोई चीज नही जो मनुष्य शरीर से न मिल सके । गीता मे आया है ।

'य लब्ध्वा चापर लाभ मन्यते नाधिक तत' ।

(गीता ६/२२)

जिस लाभ की प्राप्ति होने के बाद कोई लाभ शेष न रहे । मानने मे भी नही आ सकता कि इससे बढकर कोई लाभ होता है और जिसमे स्थित होने पर वह गुरुतर दु ख मे भी विचलित नही किया जा सकता । किसी कारण शरीर के टुकडे-टुकडे किए जाय तो टुकडे करने पर भी आनन्द है, शान्ति है, मस्ती है । उसमे वह विचलित नही हो सकता । उस सुख मे कमी नही आ सकती ।

त विद्याद् दु खसयोगवियोग योगसज्ञितम्' ।

(गीता ६/२३)

इतना आनन्द होता है कि दु ख वहा रहता ही नही । ऐसी चीज प्राप्त हो सकती है, मानव-शरीर से । मनुष्य शरीर की ऐसी महिमा तत्त्व-प्राप्ति की योग्यता होने के कारण से है । मनुष्य शरीर को प्राप्त करके ऐसे ही तत्त्व की प्राप्ति करनी

भोग कहा नही मिलेगे ? सूअर है—इनके एक साथ दस–
ारह बच्चे होते है। अब एक दो बच्चे पैदा कर लिये तो क्या
ार लिया ? कौनसा बडा काम कर लिया ? धन कमा लिया
ो कौनसा बडा काम कर लिया ? साप के पास बहुत धन
ोता है। धन के ऊपर साप रहते हैं। तो उसके पास भी धन
। धन कमाया तो कौनसी बडी बात हो गई ? ऐश–आराम
ने सुख देखते हैं और कहते है कि इसमे सुख भोग ले। बम्बई
मे मैंने कुत्ते देखे है। उन्हे बडे आराम से रखा जाता है।
बाहर जावे तो मोटर और हवाई जहाज मे जावे। मनुष्यो मे
भी बहुत कम को ऐसा आराम मिलता है, जो कुत्ते को
मिलता है। भाग्य मे है तो कुत्तो को भी मिल जायगा। कौन
सा काम बाकी रह जायगा, जिस वास्ते मनुष्य शरीर नष्ट
किया जाय। भोगो के भोगने मे, ससार का सुख लेने मे, धन
कमाने मे मनुष्य शरीर बर्बाद कर देना है। कितनी बडी भूल
की बात है। झूँठ, कपट, बेईमानी करके मनुष्य नरको की
तैयारी कर लेता है, यह महा पतन की बात है। कितना ऊँचा
शरीर मिला है मनुष्य को। उस शरीर मे आकर ऐसा काम
करले ! तो सावधान रहना चाहिये कि बडे से बडा काम हमे
करना है, बढिया से बढिया काम हमे करना है। यह काम
दूसरी योनि मे नही हो सकता।

मनुष्य शरीर मे किये हुए पापो का ८४ लाख योनियो मे
भोग होता है। सत्य, त्रेता, द्वापर, कलि—ये चारो युग बीत
जाते हैं, ८४ लाख योनि भोगते-भोगते और नरको के कुण्ड
भोगते-भोगते। फिर भी मनुष्य शरीर मे किया हुआ पाप
बाकी पडा रहता है। सचित पाप पडा रहता है। बीच मे
भगवान कृपा करके मनुष्य शरीर देते है। सचित पाप

जाओ तो तैयार, सूअर वन जाओ तो तैयार, गधे बन जाओ तो तैयार, कौआ बन जाओ तो तैयार। वह चीज कौनसी बाकी रहेगी। इन चीजो के लिये आए हो क्या मनुष्य शरीर मे ? मनुष्य शरीर खराब करते हो।" यह शरीर क्यो प्राप्त किया ? भगवान ने कृपा कर शरीर दिया है तो इस शरीर से होने वाले वे लाभ लो, जो दूसरे शरीर मे हो नही सकते।

"बड़ भाग मानुष तनु पावा।
सुर दुर्लभ सब ग्रथन्हि गावा।।" (मानस ७/४२/४)

मनुष्य शरीर देवताओ को दुर्लभ है, ऐसा ग्रन्थो मे कहा है। ऐसा दुर्लभ शरीर, जिसको प्राप्त करके केवल परमात्म-तत्त्व की प्राप्ति करनी चाहिये। केवल परमात्म तत्त्व मे ही सच्चे हृदय से लगना चाहिये। एकदम लग जाना चाहिये। मौका है भाई। जैसे मनुष्य शरीर दुर्लभ है, वैसे कलियुग भी दुर्लभ है। सतयुग, त्रेता, द्वापर मे समय चला जाता है। जितना मौका कलियुग मे मिलता है, उतना अन्य युग मे मौका नही मिलता। ऐसे कलियुग मे मौका मिला। उस कलियुग को प्राप्त करके भोगो मे लग गए अथवा पापो को करने मे लग गए, अन्याय करने मे लग गए। शास्त्र की दृष्टि से अन्याय, हम भी विचार करके देखे तो अन्याय, लौकिक दृष्टि से अन्याय, लोग देख ले तो शर्म आवे। ऐसे-ऐसे कामो के बीच मे लग जाय मनुष्य शरीर प्राप्त करके। कितनी हानि की बात है! तो हम क्या करें।

आज दिन तो हुआ सो हुआ। गलती हुई तो हुई। आज से ही दृढ निश्चय करलो कि समय बरबाद नही करेंगे, पाप व अन्याय नही करेंगे। जल्दी से जल्दी तत्त्व की प्राप्ति कैसे हो ? कैसे [illegible] तत्त्व का बोध हो ? कैसे उस परमात्मा से प्रेम हो

सकती है। भगवान ने विश्वास किया। यदि यहाँ आकर जीव भगवान की प्राप्ति नही करता है, तो भगवान के साथ विश्वासघात करता है। यहा आकर के पाप, झूँठ, कपट करता है तो बडा भारी नुकसान है।

निश्चय करलो कि आज से ही पाप नही करेगे। अन्याय नही करेगे, और भगवत् तत्त्व की प्राप्ति करेगे। जैसे व्यापारी व्यापार खोजता है, इस तरह से परमात्म तत्त्व की प्राप्ति के लिए खोज मे लगना चाहिये। आपको कोई सन्त महात्मा मिल जाय, कोई भगवत् प्राप्त पुरुष मिल जाय तो हरेक से पूछो भगवान कैसे मिले ? भगवान के चरणो मे प्रेम कैसे हो ? जीवन-मुक्ति कैसे हो ? इस बात की लालसा जगाओ तो—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिलइ न कछु सदेहू। (मानस १/२५८/३)

सुख भोग और सग्रह की भावना—यह दो बाधाये है जिससे मनुष्य भगवान की ओर नही चलता।

× × × ×

सतो के दर्शन, भाषण व चितन से शान्ति मिलती है।

सन समागम करना चाहिये। यह नौका सदृश है, इसमें बैठ कर पार हो जायेंगे। सत्सग चन्दन की तरह पवित्र बनादे, और पारस रूपी सत्सग मे लोहा कचन हो जाय। लोहे ने कचन बनादे, ऐसा सत्सग है। सुन्दरदास जी महाराज कहते है —

"और उपाय नही तिरने का सुन्दर काटहि राम दुहाई।"
रामजी की सौगध दे दी कि कल्याण का और कोई उपाय नही है। यह अचूक उपाय है। इस वास्ते सत्सग मे जाकर बैठ जाये तो निहाल हो जाय। सत् का सग करो। जहाँ भगवान की चर्चा हो, सत्चर्चा हो, सत्चिन्तन हो, सत्कर्म हो और सत्सग हो तो सत् के साथ सम्बन्ध हो जाए। सत् अर्थात् परमात्मा के साथ सम्बन्ध हो जाय। बस निहाल हो जाय जीव।

सत् का सग (सत्सग) मिल जाय तो आदमी निहाल हो जाय। जहाँ सत् का सग हुआ वह निहाल हुआ। कारण क्या है ? परमात्मा सत् है। दोनो मिल गए तो जयराम जी की। बीच मे जितना-जितना असत् का सम्बन्ध है, वही बाधा है।

जैसे कल्पवृक्ष के नीचे जाने से सब काम सिद्ध होते है, वैसे ही सत्सग करने से सब काम सिद्ध होते है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष--चारो पुरुपार्थ सिद्ध होते है। तो क्या सत्सग से धन मिल जाता है ? कहते है कि सत्सग से बडा विलक्षण धन मिलता है। रुपया मिलने से तो तृष्णा जागृत होती है, और सत्सग करने से तृष्णा मिट जाती है। रुपयो की जरूरत ही नही रहती।

गगा पाप शशी ताप दैन्य कल्पतरूर्हरेत्।
पाप ताप तथा दैन्य सद्य साधुसमागम ॥

गगाजी मे स्नान करने से पाप दूर हो जाते है, पूर्णिमा को चन्द्रमा पूरा उदय होता है, उस दिन तपत (गरमी) शात हो जाती है, कल्पवृक्ष के नीचे बैठने से दरिद्रता दूर हो जाती है। पर सत्सग से तीनो बाते होती है--पाप नष्ट होते है, भीतरी ताप मिट जाता है और ससार को दरिद्रता दूर हो जाती है। "चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआँ वेपरवाह, जिनको कछु न चाहिए, सो साहन पति-शाह ॥" सत्सग मे हृदय की चाहना भी मिट जाती है। यह बात एकदम सच्ची है, सत्सग करने वाले भाई-बहिन तो इस बात को जानते है। बिल्कुल ठीक बात है, सत्सग से हृदय की जलन दूर हो जाती है।

देते हैं। सत्सग दे दिया तो समझो भगवान के खजाने की बढ़िया चीज मिल गई। जो भगवान के प्यारे होते है, वे भगवान के भीतर रहते हैं। यह हृदय का धन है। माता-पिता जिस बालक पर ज्यादा स्नेह रखते है, उसको अपनी पूँजी बता देते हैं कि बेटा, देखो यह धन है। ऐसे ही भगवान जब बहुत कृपा करते है तो अपने खजाने की चीज (पूँजी) सत महात्माओ को देते है—लो बेटा, यह धन हमारे पास है।

सत्सग मिल जाय तो समझना चाहिये कि हमारा उद्धार करने की भगवान के मन मे विशेषता से आ गई, नही तो सत्सग क्यो दिया? हम तो ऐसे ही जन्मते-मरते रहते, यह अडगा क्यो लगाया? तो यह कल्याण करने के लिये लगाया है। इस वास्ते जिसको सत्सग मिल गया तो समझो उसको भगवान ने निमन्त्रण दे दिया—आ जाओ। ठाकुरजी बुलाते है। अपने तो प्रेम मे सत्सग करो, भजन स्मरण करो, जप करो। सत्सग करने मे सब स्वतन्त्र है। सत् परमात्मा सब जगह मौजूद है। वह परमात्मा मेरा है और मै उसका हूँ, ऐसा मानकर सत्सग करे तो वह निहाल हो जाय।

सत्सग कल्पद्रुम है। सत्सग अनन्त जन्मो के पापो को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। जहाँ सत् की तरफ गया कि असत् नष्ट हुआ। असत् तो बेचारा नष्ट ही होता है, जीवित रहता ही नहीं। इसने पकड़ लिया असत् को। अगर यह सत् की तरफ जायगा तो असत् तो खत्म होगा ही। सत्सग अज्ञानरूपी अन्धकार को दूर कर देता है। महान् परमानन्द-पदवी को दे देता है। यह परमानन्द-पदवी दान करता है। कितनी विलक्षण बात है। सत्सग क्या नहीं करता? सत्सग सब कुछ करता

एक सज्जन मिले। वे कहते थे कि तीर्थों का महात्म्य बहुत है। गगाजी अच्छी है, यमुना जी अच्छी है, प्रयागराज बडा अच्छा है —ऐसा लोग कहते तो हैं, परन्तु किराया तो देते नही। किराया दे तो वहाँ जाये। सत्सग मे बढिया बढिया बात सुनते है, और किराया भी मिलता है—परमात्मा के धाम जाने के लिये। सत्सग मे ज्ञान मिलता है, प्रेम मिलता है, भगवान की भक्ति मिलती है। भगवान् शबरी से कहते है, शबरी "प्रथम भगति सतन्ह कर सगा"। यहाँ तेरे को सत्सग मिल गया, यह भगवान की कृपा है। दण्डक वन था, उसमे वृक्ष आदि सब सूखे हुए थे। उसमे शबरी रहती थी। मतग ऋषि थे, बडे वृद्ध सत, कृपा की मूर्ति। उन्होने शबरी को आश्वासन दे दिया था, कि बेटा, तू चिन्ता मत कर, यहाँ रह जा। ऋषि-मुनियो ने इसका बडा विरोध किया, पर सत की कृपा बडी विचित्र होती है, अलभ्य होती है। धनी आदमी राजी हो जाय तो धन दे दे, अपनी कुछ चीज दे दे, परन्तु सत कृपा करे तो भगवान को दे दे। उनके पास भगवान रूपी धन होता है। वे सामान्य धन के धनी नही होते है, असली धन के धनी होते है, मालामाल होते है, और वह माल ऐसा विलक्षण है कि दानेन वर्धते नित्यम्, ज्यो-ज्यो देता है, त्यो-त्यो बढता है। ऐसा अपूर्व धन है। इस वास्ते खुला खर्च करते हैं। खुला भडार पडा हुआ है, अपार, असीम, अनन्त है, जिसका कोई अत ही नही है। भगवान् का ऐसा अनन्त अपार खजाना है। फिर भी मनुष्य मुफ्त मे दु ख पा रहे है। इसलिये सज्जनो, बडे आश्चर्य की बात है "पानी मे मीन पियासी, मोहि देखत आवै हाँसी। जल बिच मीन, मीन बिच जल है निश दिन रहत पियासी।" भगवान मे सब ससार है और सबके भीतर भगवान है। उस भगवान से विमुख होते है "सनमुख होइ जीव

तुलसी कोरे पाप ते, हरि चर्चा न सुहाय।
जैसे ज्वर के ज्वार ते, भूख बिदा ह्वै जाय।

मनुष्य को बुखार आ जाता है तो भूख नही लगती, अन्न अच्छा नही लगता। अन्न अच्छा नही लगता तो इसका अर्थ है उसको रोग है। जब पित्त का जोर होता है तो मिश्री भी कडवी लगती है। मिश्री कडवी नही है, उसकी जीभ कडवी है। इसी तरह से जिसको भगवान की चर्चा सुहाती नही, तो इसका कारण है कि उसे कोई बडा रोग हो गया। कथा मे रुचि नही होती तो स्पष्ट है कि अन्त करण बहुत मैला है, मामूली मैला नही, ज्यादा मात्रा मे मैला है। ज्यादा मैला होने पर क्या उसको सत्सग दूर नही कर सकता? सत्सग सब मैलो को दूर कर सकता है, पर मनुष्य पास मे ही नही आता। बुखार का जोर होने से अन्न अच्छा नही लगता, और मिश्री कडवी लगती है। कैसे करे? कडवी लगे तो भी खाते रहो। मिश्री मे खुद मे ताकत है कि वह पित्त को शान्त कर देगी, और मीठी लगने लगेगी। ऐसे ही भजन मे रुचि नही, तो भी भजन करते रहो। भजन करते करते ज्यो-ज्यो पाप नष्ट होते है त्यो-त्यो उसमे मिठास आने लगता है।

है। इससे ज़हर चढ़ जाता है तो वह बढ़ता जाता है। अ-
अगर सत्संग में जाकर बूटी सूँघ ले, तो स्वस्थ हो जाय
प्रसन्न हो जाय। चित्त की चिन्ता दूर हो जाय। फिर जाकर
संसार का काम करे। काम करते करते इसमें उलझ जाते हैं
तो ज़हर चढ़ जाता है। वह ज़हर सत्संग में जाने से ठीक हो
जाता है। इस तरह करते हुए हमारे जो शत्रु हैं—काम, क्रोध
लोभ, द्वेष आदि वे सबके सब मर जाते हैं। जैसे अन्न, जल
आवश्यक है साँस लेना आवश्यक है, इसी तरह सत्संग भी
प्रतिदिन करना जरूरी है। वह तो रोज की खुराक है। सत्सं-
ग से बहुत शान्ति मिलती है बहुत बीमारियाँ दूर होती हैं
सत्संग सूर्य होता है जो अन्तःकरण के अन्धकार को दूर कर
देता है। इससे पाप दूर हो जाते हैं, बिना पूछे शंकाएँ दूर हो
जाती हैं। तरह तरह की जो हृदय में उलझनें हैं, वे सुलझ
जाती हैं।

सत्संग जहाँ हो जाय, मिल जाय तो समझना चाहिये
कि भगवान ने विशेष कृपा की। भगवान शंकर ने दो ही बातें
माँगी—पद सरोज अनपायनी भगति, और 'सदा सत्संग।'

प्रश्न—सत्संग से मुफ्त में लाभ मिलता है सो कैसे?

उत्तर—सत्संग से जो लाभ होता है वह साधन से नहीं
होता। साधन करके जो परमात्म तत्त्व को प्राप्त करना है,
वह कमा कर धनी बनना है और सत्संग में वह गोद चला
जाता है, कमाया हुआ धन मिल जाता है। संतों से कमाया
हुआ धन मिलता है तो गोद जाने वाले का क्या जोर आवे।
बाप कंगाल और बेटा करोड़पति। वह तो जा बैठा गोद में।
इसलिये वह धन का मालिक हो जाता है। सत्संग के द्वारा
ऐसी चीजें मिलती हैं, जो वर्षों तक साधन करने से भी नहीं

मिलती। इस वास्ते सत्सग मिल जाय तो अवश्य करना चाहिये। मुफ्त मे कल्याण होता है, मुफ्त मे।

प्रश्न नाम जप से अधिक सत्सग की महिमा कही--इसका क्या कारण है ?

उत्तर सत्सग करने वाला नाम जपे बिना रह नही सकता। नाम जप स्वाभाविक ही होगा।

प्रश्न सत्सग न मिले तो क्या करे ?

उत्तर भगवान से प्रार्थना करे हे नाथ ! हे नाथ ! करके पुकारो। भगवान सर्व समर्थ हैं। उनको पुकारते जाओ वे सत्सग की व्यवस्था बैठा देगे। इसके अलावा सत् शास्त्रो का अध्ययन करे।

प्रश्न किसी ने एक सत से पूछा कि मनुष्य का सुधार करने मे सबसे बढिया उपाय क्या है ? अपने अनुभव के आधार पर बतावे।

उत्तर मेरे को जितना लाभ सत्सग से हुआ है, उतना किसी साधन से नही हुआ। अच्छे सग मे रहने से बडा भारी लाभ होता है, जिसकी कोई सीमा नही। सत्सग मत छोडो, जिस सत्सग से अपनी हृदय की गाठ खुलती है, आत्मसात होता है, प्रकाश मिलता है, ऐसा सत्सग छोडो मत। सब कुछ मिल जाता है पर "सत समागम दुर्लभ भाई।"

प्रश्न सत्सग से प्रकाश कैसे मिलता है !

उत्तर सत्सगति का अर्थ होता है प्रकाश। जैसे हम कही जाते है और रात्रि का समय हो तो मोटर का प्रकाश सामने ही रहता है। ऐसा नही होता कि प्रकाश पीछे रह

श्री हरि :

दुर्गणों का त्याग-दृढ़ निश्चय से

आप खूव ध्यान दे, मनुष्य से दोष उस समय होता है जब वह किसी से कुछ चाहता है। अपना अभिमान होता है और मुख चाहता है, सयोग-जन्य सुख की अभिलापा भीतर होती है। अर्जुन ने पूछा कि मनुष्य पाप करना नही चाहता, फिर पाप क्यो हो जाता है? तो भगवान् ने यही उत्तर दिया है कि उसके मन मे सुख-भोग की, सग्रह की कामना है, चाहना है। जब तक यह चाहना होगी, तब तक पाप होता ही रहेगा। सावधान होने पर भी फिर गफलत हो जायेगी, फिर करेगा।

तो इसके मिटने का उपाय क्या है? असली उपाय भीतर का प्रायश्चित है, पश्चाताप हो जाय जलन पैदा हो जाय। जिस पाप के करने से सुख होगा, उस सुख की अपेक्षा पश्चाताप अधिक हो जाय और यह प्रतिज्ञा कर ले कि कभी किसी को धोखा दूगा नही, ऐसी भूल कभी नही करूगा, ऐसा पक्का विचार कर ले और उस पर डटा रहे तो पहले किया हुआ पाप नष्ट हो जाता है। परन्तु यदि विचार भी करता रहता है फिर भी वैसा ही पाप करता रहता है ता वह नष्ट नही होता। नया नया पाप होता रहता है, फिर पतन होता ही चला जाता है। पक्का पश्चाताप हो जाय कि अब ऐसा काम नही करेगे, इस पर डटा रहेगा तो उसका अन्त करण शुद्ध हो जायगा, निर्मल हो जायेगा। जितना पश्चाताप अधिक

लेने का विचार मत रखो नही तो कोई बचा नही सकेगा, महान् कष्ट मे जाना ही पडेगा क्योकि पापो को पकड लिया आपने, पाप के बाप को भी पकड लिया। एक कहानी आती है। एक अच्छे पण्डित जी थे, अपने घर पर रहते थे, कथा कहते थे, लोगो को सुनाते, पढाते थे। एक दिन पण्डित जी की स्त्री ने कह दिया कि महाराज! पाप का बाप कौन है? तो पण्डित जी बता नही सके। बडा दु ख हुआ कि मैं इतना पढा-लिखा पण्डित हूँ और यह तो कुछ नही जानती और मुझे इसके प्रश्न का भी उत्तर आया नही। तो पश्चाताप हुआ और उठ करके चल दिए कि तेरे प्रश्न का उत्तर दिए बिना मै तेरे हाथ की रोटी नही खाता। स्त्री ने अनुनय-विनय किया, परन्तु पण्डित जी ने कहा कि नही। स्त्री को दु ख हुआ परन्तु विचार किया कि सुधार हो जाय तो अच्छी बात है, तो चुपचाप रही। वह जाने लगा, बीच मे एक वैश्या का घर था। वह पण्डित जी को जानती थी। उसे इस बात का आश्चर्य आया कि पण्डित जी अनमना होकर जा रहे हैं। सामने जाकर उसने विनय किया कि महाराज आप कहा जा रहे है, क्यो जा रहे है और क्या बात है? ऐसा आप म्लान मुख क्यो हो रहे है? तो पण्डित जी बोले कि मुझे बडा दु ख हे। "किस बात का"? वैश्या ने पूछा। उत्तर दिया कि एक अपढ स्त्री ने प्रश्न किया और उत्तर मुझे आया नही। इसलिए काशी जाता हूँ वहाँ पढाई करूगा। पण्डितो से पूछूगा। फिर आऊगा घर पर। वैश्या ने पूछा कि बात क्या है? पण्डित जी ने उत्तर दिया कि मेरी स्त्री ने पूछा कि पाप का बाप क्या है? मै बता नही सका। वह बोली यह बात तो मैं बता दूगी। आप वहा क्यो जाते है? वहा जाने, आने मे, अध्ययन मे कितना समय लगेगा। यह तो बडी सीधी बात है, मैं बता

दूंगी। पण्डित जी बोले कि बहुत अच्छी बात है, हमें तो दान मिलनी चाहिए। वह बोली कि आप ठहर जावें। पण्डित जी को ठहरा दिया और जाकर सौ रुपये भेंट कर दिए। बोली कि मेरी प्रार्थना है कि मेरे घर पर आप भोजन कर लें, भोजन चाहे आप स्वयं बना लें। पण्डित जी ने विचार किया कि इसमें दोष क्या है? स्वीकार कर लिया निमन्त्रण। पण्डित जी चले गए। उसने भोजन की सारी सामग्री तैयार कर ली। चौका देकर, रसोई साफ करके सामग्री सामने रख दी और पण्डित जी से रसोई बनाने के लिए कहा। पण्डित जी ने कहा—ठीक है। वेश्या ने सौ रुपये और पण्डित जी के सामने रखे और कहा कि महाराज! आप पक्की रसोई तो पाते ही हैं, दूसरे के हाथ की, मैं बना दूं अच्छी तरह से। इतनी मुझ पर कृपा हो जाय। पण्डित जी ने सोचा कि पक्की रसोई पाने में क्या है? पक्की रसोई पाते तो हैं ही, चलो इसके हाथ की पा लें। खीर मालपुआ पूरी साग सब ठीक तरह से बना ली। बनकर तैयार हो गई तो कहा, पण्डित जी महाराज! अब पावो। उनके सामने रसोई परोस दी। सामने लाकर सौ रुपये रख दिये और बोली कि एक कृपा हो जाय, मेरे हाथ से ग्रास ले लो। पण्डित जी ने सोचा इसमें हर्ज क्या है, इसके हाथ की बनाई हुई रसोई। उस से न लेकर, इस हाथ से ले लें, इसमें फर्क क्या है? पण्डित जी ने स्वीकार कर लिया। ग्रास बनाकर मुंह में देने लगी तो जैसे ही पण्डित जी ने मुंह खोला तो पण्डित जी के मुंह पर जोर का थप्पड़ मारा और बोली कि अभी तक होश नहीं आया, खबरदार मेरा जो एक भी दाना खाया। मैं आपका धर्म-भ्रष्ट नहीं करना चाहती। आपके शंका थी कि पाप का बाप कौन है? शास्त्रों में वेश्या का अन्न कितना

निषिद्ध लिखा है। आपने पढा है? "पढा तो है", पण्डित जी बोले। तो आप कैसे तैयार हो गए खाने के लिए? और वह भी मेरा बनाया हुआ, और मेरे ही हाथ मे। कारण क्या है? आपको पता नही लगा, यह जो लोभ है न, यही पाप का बाप है। होश नही रहता। गीता जी ने (२/४४) मे दो आसक्ति बताई—"भोगैश्वर्य-प्रसक्तानाम्' सुख, भोग और सम्पत्ति। इनमे एक एक से आदमी अन्धा हो जाता है। अगर दोनो हो जाय तो फिर उसमे कहना ही क्या है। पूछा गया कि मनुष्य ऐसा क्यो करता है? तो वह लोभ मे आकर करता है। सुख आराम मिले और धन मिल जाय, ऐसी चाहना होने पर फिर चाहे जो पाप करवा लो। दवाई के नाम से चाहे जो चीज खिला दो और व्यापार के नाम से चाहे जो काम करवा लो। सनातनी आदमियो ने मांस सप्लाई तक किया मिलट्री के लिये। व्यापार है, राम-राम-राम। भीतर मे लोभ है न लोभ कि रुपया आ जाय। क्या क्या अनर्थ करते है लोग! रोगटे खडे हो जाय अगर विचार करके देखे तो। ऐसे अन्याय करते है। आर है क्या? यह धन कितने दिन ठहरेगा? आप कितने दिन जीवेंगे? परन्तु पाप की गठरी तो बाध ही लेता है। सन्त लोग कहते है कि तू थोडा सा डर तो सही।

'पाप कर्म से डर रे मेरा मनवा रे।"

मन तू पाप कर्म मे डर। तू व्यर्थ मे अनर्थ करता है, लोगो का माल मारता है और भोग भोगता है। निषिद्ध रीति मे सुख भोगता है। थोडा सा विचार कर, मनुष्य शरीर मिला है तेरे को। अच्छी अच्छी बाते सुनने, कहने का मौका मिलता है, फिर भी तू ऐसा करता है। भाइया, सज्जनो!

मार्ग मे कलक है। तो क्या पहले कलक का भी त्याग नही कर सकते ? हृदय से त्याग कर दो। भीतर से त्याग का भाव मुख्य है इतना होने पर भी किसी कारण से कोई पाप या दोष हो जाय तो जलन पैदा हो जायेगी यह इसकी पहिचान है। अशान्ति हो जायेगी । उस जलन मे यह ताकत है कि अगाडी पाप नही होगा। पक्का विचार कर ले कि अब नही करेंगे। हे नाथ! ऐसा बल दो, ऐसी शक्ति दो कि आपकी आज्ञा के विरुद्ध कोई काम न करें। तो भगवान् मदद करते है, धर्म मदद करता है, शास्त्र मदद करते है, सन्त महात्मा मदद करते है। सच्चे हृदय से परमात्मा की तरफ चलने वाले के लिये दुनिया मात्र कृपा करती है और मदद करती है। दूसरे पाप आचरण वाले पुरुष भी मदद करते है, उनकी सहायता करते हैं।

खाने वाले है, परन्तु राज्य का लगान बहुत बढ गया है, वह दे नही सकते, इस वास्ते चोरी करके लाकर देना पडेगा। इस वास्ते हम चोरी करने को जा रहे है। सन्त ने कहा कि भैया चोरी करना अच्छा नही है। उन्होने कहा कि हम भी अच्छा नही समझते। परन्तु करे क्या ? इतना लगान कहाँ से दें ? हमारे पास है नही। इतनी बात करी। पर मेरी कम्बल नही ली। तो आदमी लोभ मे ऐसा करता है, लोभ मे भी आफत आ जाती हे तब और बिना आफत के लोभ मे चोरी करे, दूसरो को दु ख दे, धन मार ले, कितनी पाप की बात है, कितनी अन्याय की बात है। ये एक विलक्षण बात है कि निर्धन होने पर भी पाप न करे। दु ख पा ले पर पाप न करे, अन्याय न करे

सिबि दधीच हरिचन्द नरेसा।
सहे धरम हित कोटि कलेसा।। (मानस २/९४/२)

धर्म के लिये करोडो कष्ट सह लिये। पर अपने धर्म से विचलित नही हुए।

धीरज धर्म मित्र अरु नारी।
आपद काल परखिअहि चारी।। (मानस ३/४/४)

इनकी परीक्षा आपत्ति के समय होती है। तो मनुष्य के लिये बहुत ही आवश्यक है कि धैर्य खोवे नही। जोर-२ से हवा आती है कभी-कभी, तो बडे बडे वृक्ष टूट जाते है। पर उस हवा मे भी ठीक रह जाये तो फिर मौज से रहे, कोई खतरा नही। इसी तरह काम, क्रोध, लोभ आदि की हवा का झोका मिट जाता है, तो फिर ठीक हो जाता है। थोडा सा धैर्य रखे। कैसी भी आफत आ जाय, पाप नही करेगे, अन्याय नही करेगे, शास्त्र निषिद्ध आचरण नही करगे, भूखे मरेगे तो

क्रियात्मक उपदेश दे रही है। साधारण खर्चा करो और साधारण कमाओ और खाओ। उससे पाप कोई नही करवा सकता। कुछ रुपये कमाने तक छूट है न टैक्स की ? उतने के भीतर भीतर कमाओ। कहते हैं खर्चा कहा से लावें, छोरी का व्याह कैसे करे ? मुश्किल हो जाती है, सभ्यता है। सभ्यता को तिलाजलि दे दो, पानी दे दो, पानी मे खड़े होकर। हमे वह सभ्यता नही रखनी। हमारी वेइज्जती ही सही। पाप तो करेंगे नही। अन्याय करेंगे नही। वेइज्जती हो जाय, उससे डरेंगे नही। पुण्य करते हुए, शुभ काम करते हुए, धर्म के ऊपर चलते हुए, अगर निन्दा करें, तो करो।

त्रिविध नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मन : (गीता १६/२१)

अपना पतन करने वाले काम, क्रोध और लोभ ये तीन प्रकार के नरकों के दरवाजे हैं। इनमे प्रविष्ट हो गया, तो नरको मे तो गया ही। यदि भगवान् को याद करे कि अगाडी ऐसा नही करेंगे तो नही जायेगा। जव कभी सुधर जाय उमर भर मे, जव कभी चेत हो जाय और विचार पक्का हो जाय कि पाप कभी नही करूगा, तो पूरा प्रायश्चित्त हो जायेगा। भगवान् की कृपा से उसको वल भी मिल जायेगा, धर्म मिल जायेगा और वह सन्त वन जायेगा। ऊपर से दीखने पर वह भाई हो चाहे वहिन हो, गृहस्थ हो कुछ भी हो, भगवान् तो भीतर का भाव देखते हैं - "भावग्राही जनार्दन" वे भाव भोक्ता हैं। भाव जिसका निर्मल हो गया, वह तो निर्मल हो ही गया। वाहर मे निर्मल होने मे, अच्छा वनने मे देरी लगती है, पर भाव कि हम पाप नही करेंगे, इतने मे वहुत जल्दी शुद्ध हो जाता है।

"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह." निश्चय कर लिया कि पारमार्थिक मार्ग मे ही चलना है, कुछ भी हो जाय। "अपि चेत्सुदुराचारो."—पापी से पापी हो तो उसे भी "साधुरेव स मन्तव्य"—साधु ही मानना चाहिए, क्योकि "सम्यग् व्यवसितो हि स:"—पक्का निश्चय कर लिया, पक्का। उस भाव के अनुसार वह पवित्र हो जाता है।

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की॥ (मानस १/२८/३)

पहले दोष बन गए, उन बातो को भगवान् याद नही करते। जिसका भाव अच्छा है और इधर चलना चाहता है, उसको भूल न जाऊ, भगवान् उसे सौ बार याद करते हैं। ऐसे प्रभु के रहते हुए सज्जनो! भय किस बात का? सच्चे हृदय से पाप का त्याग कर दो। अभी तो लोभ मे आकर पाप कर बैठते हो, परन्तु अगाडी दशा क्या होगी? इसका कुछ विचार है? धन यही रहेगा, सम्पत्ति यही रहेगी, मर जावोगे, उम्र भर मे खर्च कर सकोगे नही। पाप से कमाया हुआ धन खर्च नही किया जायेगा, बाकी बचेगा और पाप किया हुआ कर्म पीछे नही रहेगा, साथ चलेगा। और महान् दण्ड भोगना पडेगा। तो समझकर आदमी को तो जल्दी चेत कर लेना चाहिए, तत्काल। केवल विचार हो जाय कि अब पाप नही करेंगे अन्याय नही करेगे।

दूसरो का बुरा करोगे तो तुम्हारा बुरा होगा। दूसरो का भला करोगे तो तुम्हारा भी भला होगा. क्योकि दूसरो का भला करने से अपना भला अपने आप होने लगता है।

क्रियात्मक उपदेश दे रही है। साधारण खर्चा करो औ साधारण कमाओ और खाओ। उससे पाप कोई नही कर सकता। कुछ रुपये कमाने तक छूट है न टैक्स की ? उतने भीतर भीतर कमाओ। कहते है खर्चा कहा से लावें, छो का व्याह कैसे करे ? मुश्किल हो जाती है, सभ्यता है सभ्यता को तिलाजलि दे दो, पानी दे दो, पानी मे खड़े होकर हमे वह सभ्यता नही रखनी। हमारी वेइज्जती ही सही पाप तो करेंगे नही। अन्याय करेंगे नही। वेइज्जती हो जाय उससे डरेंगे नही। पुण्य करते हुए, शुभ काम करते हुए, धर के ऊपर चलते हुए, अगर निन्दा करे, तो करो।

त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन : (गीता १६/२१

अपना पतन करने वाले काम, क्रोध और लोभ ये तीन प्रकार के नरको के दरवाजे है। इनमे प्रविष्ट हो गया, तो नरको मे तो गया ही। यदि भगवान् को याद करे कि अगाडी ऐसा नही करेंगे तो नही जायेगा। जब कभी सुधर जाय उमर भर मे, जब कभी चेत हो जाय और विचार पक्का हो जाय कि पाप कभी नही करूगा, तो पूरा प्रायश्चित हो जायेगा। भगवान् की कृपा से उसको बल भी मिल जायेगा, धर्म मिल जायेगा और वह सन्त बन जायेगा। ऊपर से दीखने पर वह भाई हो चाहे बहिन हो, गृहस्थ हो कुछ भी हो, भगवान् तो भीतर का भाव देखते हैं - "**भावग्राही जनार्दन**" वे भाव भोक्ता है। भाव जिसका निर्मल हो गया, वह तो निर्मल हो ही गया। बाहर से निर्मल होने मे, अच्छा बनने मे देरी लगती है, पर भाव कि हम पाप नही करेंगे, इतने मे बहुत जल्दी शुद्ध हो जाता है।

"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह" निश्चय कर लिया कि पारमार्थिक मार्ग मे ही चलना है, कुछ भी हो जाय। "अपि चेत्सुदुराचारो"—पापी से पापी हो तो उसे भी "साधुरेव स मन्तव्य"—साधु ही मानना चाहिए, क्योकि "सम्यग् व्यवसितो हि स"—पक्का निश्चय कर लिया, पक्का। उस भाव के अनुसार वह पवित्र हो जाता है।

रहति न प्रभु चित चूक किए की।
करत सुरति सय बार हिए की।। (मानस १/२८/३)

पहले दोष बन गए, उन बातो को भगवान् याद नही करते। जिसका भाव अच्छा है और इधर चलना चाहता है, उसको भूल न जाऊ, भगवान् उसे सौ बार याद करते है। ऐसे प्रभु के रहते हुए सज्जनो! भय किस बात का? सच्चे हृदय से पाप का त्याग कर दो। अभी तो लोभ मे आकर पाप कर बैठते हो, परन्तु अगाडी दशा क्या होगी? इसका कुछ विचार है? धन यही रहेगा, सम्पत्ति यही रहेगी, मर जावोगे, उम्र भर मे खर्च कर सकोगे नही। पाप से कमाया हुआ धन खर्च नही किया जायेगा, बाकी बचेगा और पाप किया हुआ कर्म पीछे नही रहेगा, साथ चलेगा। और महान् दण्ड भोगना पडेगा। तो समझकर आदमी को तो जल्दी चेत कर लेना चाहिए, तत्काल। केवल विचार हो जाय कि अब पाप नही करेंगे अन्याय नही करेंगे।

दूसरो का बुरा करोगे तो तुम्हारा बुरा होगा। दूसरो का भला करोगे तो तुम्हारा भी भला होगा, क्योकि दूसरो का भला करने से अपना भला अपने आप होने लगता है।

श्रो हरि .

संसार में रहने की विद्या

वास्तव मे अभिमान और ममता का त्याग कठिन है। परन्तु एक बात आपको वताई जावे, भाई-वहिन अपने-अपने घरो मे अनुष्ठान करे, उसके अनुसार जीवन वनावें, तो वहुत सुगमता से अभिमान और ममता का त्याग हो सकता है। घरो मे प्राय करके दो बातो को लेकर लडाई होती है। काम-धन्धा तो तुम करो और चीज वस्तु मैं ले लू। आराम, आदर, सत्कार सव कुछ मेरे को लेना है। काम-धन्धा और खर्च भी तुम करो। इन वातो को लेकर खटपट चलती है। अगर इनको उलट दिया जाय, काम-धन्धा मै करू, आराम आप करो। आदर-सत्कार, मान-प्रशसा ये लेने की नही देने की हैं तो, दूसरो का आदर करें, मान दे, आराम दे, सत्कार करे, उनकी आज्ञा पालन करे, उनको सुख पहुँचावे, ऐसे आपस मे किया जावे तो प्रेम वढता है।

मनुष्य का स्वभाव है कि वह अपने मन की बात पूरी करना चाहता है, और अपने मन की होने से राजी होता है। धन की, मान की, वडाई की, जीने की कामना होती है। परन्तु इन कामनाओ मे मूल कामना यह है कि मेरे मन की वात हो जाय। यह बात बढिया नही है। तो, अपने मन की बात न करके औरो के मन की बात करता चला जाय तो

निहाल हो जाय । इसमे केवल दो बातो का खयाल करना है कि उसकी वात न्याय युक्त हो, और अपनी सामर्थ्य मे हो । इसका एक सरल उपाय है । यह निश्चय करले कि हमे ससार से लेना नही है—ससार की सेवा करनी है । क्यो करनी है ? क्योकि लिया है इस वास्ते देना है । तो, ससार को देना है, लेना नही है ।

एक मार्मिक वात बताये आप को । ध्यान दे कर सुने । मानव शरीर परमात्मा की प्राप्ति के लिये मिला है । ससार मे रहने की एक रीति है । उस रीति को हम धारण करे, तो परमात्मा की प्राप्ति बहुत सुगमता से हो जाय । हरेक काम करने की एक विद्या होती है, यदि उसके अनुसार काम करते है तो वह काम पूरा हो जाता है । ससार मे रहने की भी एक विद्या है तो उस विद्या को भी जानना चाहिये । विद्या का पालन करें तो बडी सुगमता से ससार मे रहेगे और ससार को पार कर जायेंगे । वह विद्या क्या है ? जिसने जिसके साथ जो सम्वन्ध मान रखा है, उसके अनुसार अपने कर्तव्य का पालन करे, वडी तत्परता से, और उससे अपनी कोई भी इच्छा न रखे, कामना न रखे, वासना न रखे । अपने लेना नही है, देना है । यह शरीर है, ससार क. मुख लेने के लिये नही मिला है । "एहि तन कर फल विषय न भाई" । शरीर का फल तो सेवा करना है । माता के लिये पुत्र बनो तो सपूत बन जाओ । मा की सेवा करो। माता के पास रुपये है, गहने-कपडे हैं, तो कहो मा, जो तुम्हारे पास है उसे हमारी वहिन को दे दो । छोटे भाई या बडे भाई को दे दो । मेरे ऊपर तो एक ही कृपा करो कि सेवा मेरे से ले लो । माँ-बाप की सेवा से आदमी उऋण नही हो सकता । उनका जितना भी ऋण

हमारे ऊपर है, उसे हम चुका नही सकते। ऋरण को अदा नही कर सकते। कोई उपाय नही है। तो क्या है ? सेवा करके उनकी प्रसन्नता ले लो। प्रसन्नता लेने से वह ऋरण माफ हो जाता है। मा ने जितना कष्ट सहा है, बालक उतनी मा की सेवा नही कर सकता। सब कुछ मा ने दिया। कोई कहे कि मैं मेरे चमडे की जूती बना कर मा को पहना दूं। कोई उनसे पूछे। यह चमडा भी बाजार से लाये हो क्या ? यह तो मा का ही है। इस पर तू अधिकार क्या करता है ? मा से मिला है। आज हम बडी बडी बाते बनाते है। लोगो मे विद्वान्, सज्जन कहलाते हैं, यह शरीर मिला किससे है ? मा से मिला है। मा से पालन हुआ है।

आप कितने भी विद्वान् हो जाय। बचपन मे बैठना नही आता था, मा ने बैठना सिखाया। चलना सिखाया, उंगली पकड कर। भोजन करना नही आता था, मा ने बिठा करके मुख मे ग्रास दिया। भोजन करना सिखाया। बहिनें बैठी हैं—यह दशा थी बहिनो की, और भाइयो की भी। उस अवस्था मे मा ने पालन किया और बडे-बडे कष्ट सहे। खेल मे इधर-उधर जाते तोड-फोड करते, वृक्षो मे उलझते, बिच्छू को भी पकडने को दौडते, आग मे हाथ डालना चाहते। मा ने रक्षा की। टट्टी-पेशाब करते उसमे ही लकीरे खीचने लगते। अब जान कर, मन खराब होता है। होश नही था कुछ भी. यह सब मा ने ज्ञान कराया। बडी विलक्षणता से पालन किया।

कभी-कभी भाई लोग अभिमान मे आकर कह देते है कि क्या बडी बात है! उनसे मैं कहता हू कि बच्चे को दो दिन गोद मे रख कर देखो। मा मे मातृत्व-शक्ति है। तब

हमारा पालन हुआ । । तो जितनी अपनी सामर्थ्य हो मा-बाप की सेवा करो । जो नही जानते, कृपा करके उन्हे समझाओ कि बडो का आदर करो । जो मा-बाप का आदर नही करते, उनका भगवान् भी आदर नही करते । कोई उनका विश्वास नही करते क्योकि जो मा-बाप का नही है, वह किसका होगा ? मा-बाप की सेवा करने से भगवान् राजी होते है । आज्ञा पालन करने से सिद्धि को प्राप्त होता है । अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति होती है । इस कारण भाई-बहिनो को आज्ञा पालन करना चाहिये । आज्ञा पालन से क्या होगा ? परिश्रम होगा, सेवा होगी । निरहकार हो जायेगे । **"निर्ममो निरहकार ...."** चीज-वस्तुओ से उनकी सेवा करने से निर्मम हो जायेगे । जितनी-जितनी चीजों को सेवा मे लगा देगे, उतनी ही उनसे ममता दूर हो जायेगी और जितना परिश्रम करोगे—उतना अपना अहकार-अभिमान नष्ट हो जायेगा । आराम बुद्धि, और अपने मे बडप्पन का अहकार पतन करने वाले हैं । ससार की सेवा करते करते अभिमान को सुगमता से दूर कर सकते हो । ऐसे ही समान उम्र वालो की सेवा करो । छोटी अवस्था वाले है, उनकी भी सेवा करो । छोटो का पालन-पोषण करना भी सेवा है । सदाचार की शिक्षा देना भी सेवा है । उम्र भर सुख पायेगे—इस वास्ते बालको को अच्छी शिक्षा दो । बेटा-बेटी को अच्छी शिक्षा दो, जिनसे वे अच्छे बन जाय ।

ये माताये चाहे तो ससार का कल्याण कर सकती हैं, क्योकि हम जितने भाई-बहिन बैठे है, ये सबसे पहले मा की गोद मे आते है । मा की गोद मे खेलते है । मा का दूध पीते हैं । मा के स्वभाव का असर पडता है । महिलाये जैसी प्रकृति

(स्वभाव) की होगी वैसे ही बालक-बालिकाये होंगे। जैसे बच्चे होगे, वैसा ही वह देश बनेगा। वैसे ही नागरिक बनेंगे बडे होकर। मा छोटी अवस्था मे जो शिक्षा देती है, वह बडी काम करती है, क्योकि बचपन मे पडे हुए सस्कार बहुत काम करते है। अत माताये चाहे तो देश का बडा सुधार कर सकती हैं। माताओ मे मातृत्व-शक्ति होती है, मातृ-शक्ति। ये उसका उपयोग करे। भगवान् ने इन्हे शक्ति दी है। ये छोटी-छोटी बालिकाये है, ये भी अपने भाई-बहिन का इतना पालन करती है कि बडे लडके अपने भाई-बहिन का ऐसा पालन नही करते। आप परीक्षा ले कर देख लो। छोटे भाई-बहिन को बडे भाई की गोद मे रख कर देख लो, और बहिनें भी रखती हैं, बहिने बडे प्यार से पालन करती है। बहिनें अपनी चीजे भी छोटे भाई-बहिनो को खिला देगी। भाई अपने आप खा जायेगा। उनकी भी खा जायेगा। बालिकाओ के हृदय मे यह भाव नही आता कि यह चीज तो मेरी है। मैं क्यो दू ? यह भाव आता क्यो नही ? यह पालन-पोषण करने की शक्ति भगवान् ने दी है, यही शक्ति तो मा बनने के लिये दी है। यह जो शक्ति इन्हे दी है, यदि वे इस शक्ति का उपयोग करे तो बहुत सुगमता से निर्मम हो सकती हैं।

इसका कारण यह है कि सबका पालन-पोषण करना, सबकी रक्षा करना और सबको देना इनसे ममता दूर होती है। सेवा करने से अभिमान दूर होता है। यह बडे ऊँचे दर्जे की बात कही गई है। अगर यह व्यवहार मे आ जाय तो काम बन जाय। हमारे भाई, ऐसे ही करे। काम-धन्धा ठीक करें। चीजो को उदारता से बरतें। औरो को देवे। दो का आदर विशेषता से होता है। एक तो जो उपकार करते हैं

और दूसरे बडे-बूढे जो पूजनीय होते है । बडे-बूढे हैं, उनका आदर करे, आज्ञा माने । जो दीन है, रोगी है, अभावग्रस्त है, उनकी सेवा करे। दीन-दुखियो मे भगवान् रहते हैं । इस वास्ते यदि वहा सेवा करी जावे तो आपकी सेवा स्वीकार करने के लिये भगवान् तैयार है। इस वास्ते दीन-दुखियो से घृणा मत करो । द्वेष मत करो। ईर्ष्या मत करो। अपने मे अभिमान मत लाओ कि हम बडे है। वास्तव मे आप मे जो बडप्पन है, यह बडप्पन उन छोटे आदमियो का दिया हुआ है। ख्याल करो। धनी आदमी जो गरीबो को देता है तो उसके धन का सदुपयोग होता है। धन होते हुए भी धनवानपन गरीब आदमियो ने दिया। तो इस सुख को देने वाले गरीब है । जिनके दर्शन मात्र से आपको प्रसन्नता होती है, उनकी सेवा करना आपका कर्त्तव्य है। बडे-बूढो ने आपका पालन किया है। रक्षा की है। विद्या दी है, वुद्धि दी है, सम्पत्ति दी है। उनकी सेवा करना भी आपका कर्त्तव्य है। इस वास्ते उनकी सेवा करो। उन्हे सुख पहुचाओ, इससे हमारे पर जो पुराना ऋण है, वह तो नही उतरेगा परन्तु माफ हो जायेगा। आगे अभिमान नही होगा और ससार मे रहने की विद्या आ जायेगी। ऐसे प्रेम और सेवा होगी तो ससार के लोग चाहेगे। जो सेवा करने वाले हैं उनको सब लोग चाहते है।

मनुष्य को चाहिये जहा कही रहे अपनी आवश्यकता पैदा कर दे। भाई हो या बहिन हो, साधू हो या गृहस्थ हो, कोई क्यो न हो। अपनी आवश्यकता को जरूर पैदा करदे, तो वह ससार मे बडे सुख से रहेगा। आवश्यकता कैसे पैदा

कर दे ? एक तो हर समय अच्छे से अच्छे काम मे लगे रहो। यह समय बडा कीमती है। इस समय के समान कोई चीज कीमती नही है। आप समय देकर विद्वान् बन सकते हैं। समय देकर धनी बन सकते है। समय दे कर बडे कीर्ति वाले हो सकते है, परिवार वाले हो सकते हैं। तो समय पाकर सब चीजे मिलती है। ध्यान दे, परन्तु सब चीजे देने पर भी समय नही मिलता। कहते है उम्र भर मे जो भी प्राप्त किया एक मिनट के बदले मे वह सब कुछ देता हू परन्तु उसके बदले मे एक मिनट का समय भी नही मिलता। समय देने से सब मिलता है, परन्तु सब देने से समय नही मिलता है। समय को कितना कीमती कहे ? भागवत मे आया है—

तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः॥

(१/१८/१३)

भगवान् के प्रेमी पुरुषो का लव मात्र का सग अच्छा है। उससे न तो मुक्ति की तुलना कर सकते और न ही स्वर्ग की, केवल लव-मात्र के सग से।

गोस्वामी जी ने भी कहा है—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसग॥

(मानस ५/४)

तो सत के लव-मात्र से सग होने के समान स्वर्ग और मुक्ति की भी तुलना नही हो सकती। समय इतना कीमती है। समय मिले तो इसे बेकार मत जाने दो। उत्तम से उत्तम, ऊचे से ऊचे काम मे लगा दो इस समय को। धन को

लोग खर्च कर सकते है। वडे आदर के साथ उसकी रक्षा करते है तिजोरी मे वन्द कर देते है। धन तो तिजोरी मे बन्द हो सकता है परन्तु समय तिजोरी मे बन्द नही हो सकता। समय देने से धन मिलता है। धन देने से समय नही मिलता। समय तो हरदम सावधान होने से ही सार्थक होगा। नही तो बीत जायेगा, निरर्थक। जिन लोगो ने समय का आदर किया है, वे बडे श्रेष्ठ पुरुष बन गये। वे अच्छे महात्मा वन गये, उन लोगो ने क्या किया है? जीवन का समय भगवत् चरणो मे लगाया है। ससार के भोगो से विमुख होकर, परमात्म-तत्त्व जानने के लिये समय लगाया है। वे सत और महात्मा वन गये। समय के बराबर कोई कीमती चीज नही है ससार मे। लव-मात्र का सत्सग हो जाय। साधु-महात्मा का सग हो जाय। भगवान् का सग हो हो जाय, प्रेम हो जाय। भवगान् का आकर्पण हो जाय। वह समय सबसे ऊचा है। अत इस समय को उत्तम से उत्तम काम मे खर्च करो। स्वाध्याय करो, जप करो, कीर्तन करो, सेवा करो। अच्छी पुस्तको का पठन-पाठन करो। विषय भोगो मे, ताश, हसी-दिल्लगी, नाच-तमाशा-सिनेमा, बीडी-सिगरेट आदि मे समय वरबाद मत करो। बीडी-सिगरेट पीते है। चिलम पीते है। आप विचार करो, आपके पास समय है, उसमे भी आग लगाते हो, धुआ करते हो। धुआ हो गया, धुआ। आपका समय है उसमे भी आग लगती है। ५-७ मिनट आपने वीडी सिगरेट पीयी तो उस समय मे भी धुआ लग गया। पैसे गये, समय गया, स्वतन्त्रता गई—राम-राम-राम-राम अरे! फायदा क्या? किसी तरह का फायदा नही। जो नही पीते हैं, उन्हे आपने गन्दगी दे दी। उनकी नाक मे धुआ चढ गया।

एक सत से पूछा—महाराज ! ग्राप बीडी पीते हो ? पीते तो नही, लोग पिला देते है। कहते हैं—गाडी मे बैठते हैं, लोग फूक मारते है तो क्या करे ? तो, जो नही पीना चाहे, उन्हे लोग पिला देते है। बताओ उन्हे तग किया, दुख दिया। कहा है—"**पर हित सरिस धर्म नहि भाई। पर पीड़ा सम नहि अधमाई**"। दूसरो को पीडा दी। तो, आपको क्या मिला ? तो दूसरो की स्वतन्त्रता मे भी बाधा डाल दी। राम-राम-राम-राम। और सदा के लिये परतन्त्र हो गये। और वह भी धुए मे। ऐसे निकम्मे काम मे समय लगाया। राम-राम-राम-राम। यह समय भगवान् के लिये लगाओ तो भगवान् मिल जावे। भक्त बन जाओ। जिनके लिये भगवान् कहते है—"**मै हूँ सतन का दास हूँ। भक्त मेरे मुकुट मणि**"॥ मुकुटमणि बन जाते है। कौन ? जो भगवान् के चरणो मे समय लगाते है। भगवान् भी आदर करते हैं। क्या किया कि समय को भगवान् के चरणो मे लगाया। ऐसा समय ऐसे नष्ट करने के लिये है ? यह ताश खेलने मे, पत्ते पीटने मे समय लगा दिया। राम-राम-राम-राम। विद्या अध्ययन करते, सेवा करते, दूसरो का उपकार करते, तो समय का उपयोग होता। कितना बढिया काम होता है। वह समय ऐसे बरबाद कर दिया। यह समय ऐसे नष्ट करने के लिये नही मिला है।

हमारी बहिनो की दशा क्या हैं ? बात करने मे समय लगा देती है। राम-राम-राम। घर पर कोई बात करने को नही मिला तो पडौसी के यहा बात करने चली जाती है। समय लगा देती है। नाम-जप करो, कीर्तन करो, रामायण का पाठ करो। दिन भर राम-राम करो निहाल हो जाओगी।

मीरावाई की मुक्ति हो गई। इसमे कारण क्या था ? भगवान् का भजन किया। वह भगवान् के भजन मे लग गई तो आज मीरा वाई के पद गाये जाते है। भगवान् मे प्रम पैदा होता है। कितनी उची हो गई मीरा वाई। ससार मे प्रसिद्ध हो गई। कितना ऊचा नाम ? परन्तु यदि पूछो कि मीरा की सास का क्या नाम है ? तो उत्तर मिलता है कि पता नही। भजन करने से जीव वडा होता है। तो अपने समय को सार्थक करो। ऊँचे से ऊँचे, अच्छे से अच्छे, श्रेष्ठ से श्रेष्ठ काम मे लगाओ। समय वरवाद मत करो। यह पहली वात।

दूसरी वात—जो काम करे वह सुचारु रूप से करे। काम करने का तरीका है, जो काम करने की विद्या है उसे वढाते ही चले जाओ। लिखना-पढना, वोलना, रसोई वनाना, कपडे धोना, सफाई करना, झाडू देना, बर्तन आदि साफ करना है। वडी सफाई से करो, वडी सुन्दर रीति से करो। सुचारु रूप से करो तो काम अच्छा होगा। नौकरी ही करना है, तो नौकरी का काम ऐसे वढिया ढग से करो कि जिससे मालिक राजी हो जाय। मालिक यदि नाराज होकर निकाल भी दे तो निकलना तो पडेगा, लेकिन आपने वहा काम-धन्धा करके विद्या तो हासिल कर ली। क्या वह उस विद्या को छीन लेगा ? नीति मे आता है कि ब्रह्मा नाराज होकर हस को निकाल दे, तो क्या वह दूध-पानी को अलग करने की विधि को भूल जायेगा ? इस विद्या को तो ब्रह्मा जी भी वापिस नही ले सकते। काम करने की आदत है आपका स्वभाव है, उसे कोई छीन नही सकेगा। वह गुण तो आपके पास रहेगा। वह कितनी वढिया वात है। श्रेष्ठ वात है। समय की सार्थकता करना, कार्य-कुशलता को वढाते चले जाना है। वोलना है,

चलना है, सब बाते बढिया तरह करना । थोडे समय मे, थोडे खर्चे मे बढिया हो जाय, ऐसा बनाओ जो सब लोग खुश हो जाये, प्रसन्न हो जाये गृहस्थो से ऐसी बाते हमने सुनी है, जो माताए-बहिने चीजे अच्छी बनाती है, उनका सब आदर करते है, उन्हे बनवाने के लिये बुलाते है। परन्तु इस बात का अभिमान नही करना है। अभिमान तो पतन करने वाला होता है। "निर्ममो निरहकार" अहकार तो छोडना है। अरे! काम-धन्धा करके फिर उससे भी अहकार कर लो। इस वास्ते सुन्दर रीति से काम करो, सुचारू रूप से काम करो। मान-बडाई के लिये नही, रुपये-पैसो के लिये नही। वाह-वाह के लिये नही, अपना अन्त करण शुद्ध करने के लिये, निर्मल करने के लिये, जिससे भगवान् मे प्रेम बढे। प्रेम बढाने के लिये काम-धन्धा करो। सेवा करो। काम मे चातुर्य बढाने से आपकी माँग हो जायेगी।

तीसरी बात—व्यक्तिगत खर्चा कम करो। दान-पुण्य करो। बडे-बूढो की रक्षा करो। दीनो की रक्षा करो। अभाव-ग्रस्तो को दो। सेवा करो परन्तु अपने शरीर के निर्वाहार्थ, साधारण वस्त्र, साधारण भोजन, साधारण मकान, उससे अपना निर्वाह करो। यह भाई-बहिन सबके लिये बडे काम की चीज है। जो खर्चीला जीवन बना लेता है शरीर के लिये, वह पराधीन हो जाता है। खर्चा कम करना तो हाथ की बात है और ज्यादा पैदा करना हाथ की बात नही। फिर भी आजकल लोग करते क्या हैं? खर्चा तो करते है ज्यादा और पैदा के लिये सहारा लेते हैं झूठ-कपट, बेईमानी-धोखेबाजी, विश्वासघात का। इससे क्या अधिक कमा लेते है। अधिक कमा ले, हाथ की बात नही, खर्चा कम करना हाथ की बात

है। जो हाथ की बात है उसे करते नहीं और जो हाथ की नही, वह होती नही। दुख पाते है उम्र भर। इस बात को समझ ले कि भाई अपने व्यक्तिगत कम खर्चे से ही काम चला सकते हैं। बढ़िया से बढिया माल खाओ और चाहे साधारण दाल-रोटी खाओ निर्वाह हो जायेगा। यदि शरीर बीमार है तो क्या, दवाई ले लो। निर्वाह की दृष्टि से तो कोई बात नही परन्तु जो स्वाद और शौकीनो की दृष्टि हो जाय तो वह ठीक नही है। यह गलती करते है। बहुत बडी गलती करते हैं। इन्द्रियो के आधीन होते है वे। इससे बचने के लिये, स्वतन्त्र जीवन बिताने के लिये खर्चा कम करो।

धन कमाना आजकल होशियारी कहलाती है। लोग कहते है कि बडा होशियार है, कितना धन कमा लिया इसने। अरे! धन क्या कमा लिया! उम्र गवा दी। आप मर गये तो कौडी एक साथ चलेगी नही। धन कमाने के कारण जो झूठ ठगी, बेईमानी, धोखेबाजी, विश्वासघात आदि अपनाना पडा, वह जमा हुआ है अन्त करण मे और धन रह जायेगा बैंको मे, आलमारियो मे, बक्सो मे। यह साथ जायेगा नही। धन सग्रह करने मे जो-जो पाप बने वह साथ चलेगे। तो यह पाप की पोटली सिर पर रहेगी, साथ चलेगी। काले बाजार से धन कमा लिया। आय-कर की चोरी करली। बिक्री-कर की चोरी करली। बडी होशियारी की। किया क्या? महान् नाश कर लिया। महान् पतन कर लिया। साथ चलने वाली पूजी नष्ट कर दी और यहा पर रहने वाली पूजी सम्हाल ली। मरने पर कुछ साथ नही चलेगा। सब धन [illegible] रह जायेगा। पीछे लोग खायेगे। और दुख पाओगे [illegible] नरको मे जाना पडेगा आपको, यह होशियारी है [illegible]

समझदारी है। कितनी बडी भारी वेसमझी है, मूर्खता है। हाँ कह दो—पता नही था अब पता लगा। तो भाई ! पाप तो साथ मे जायेगा। धन यही रहेगा। तो अब क्या करें ? अब पाप छोड दो। अब वेईमानी, ठगी, झूठ-कपट, विश्वास-घात, धोखेवाजी नही करेंगे। परिश्रम करेंगे। जितना मिलेगा उससे काम चलायेंगे। पाप नही करेंगे। यह है चौथी वात।

कुछ लोग कहते है पहले पाप कर लिया, वह पाप तो हो ही गया। कलक तो लग ही गया। अब धन क्यो छोडे ? यह बुद्धिमानी है क्या ? मालूम था नही, हमे पता था नही, शुरू कर दिया। अरे भाई ! अब छोड दो। कोई भोजन करने लगे। कहे—यह क्या कर रहे हो, इसमे तो जहर मिला है। यह नही कहेगा कि आपने पहले नही कहा, अब तो खायेंगे। यहा तो हाथ का भोजन तो फेंक दोगे और उल्टी करनी शुरू करोगे। खाया हुआ भी निकल जाय तो बडा अच्छा है। और यह पाप करेंगे साहब, धन कमायेंगे। महाराज ! आपको पता नही। आजकल झूठ-कपट के बिना निर्वाह नही हो सकता। कानून ऐसा बन गया, ससार ऐसा ही हो गया। इस वास्ते इसके बिना काम नही चलता। अच्छा भाई ! काम चलाओ कितने दिन चलाओगे ? २० वर्ष, ५० वर्ष १०० वर्ष कितने दिन चलाओगे ? इतना तो समय ही नही मिलता। अगर नही कमायेंगे तो मर जायेंगे। क्या हर्ज है भाई ! आज बिना पाप के मर जाओ। वाद मे भी मरना तो है ही, साथ मे पाप की गठरी वाध कर क्या होगा ? अरे भाई ! बिना पाप ही मर जाओ क्या हर्ज है ? तो पाप करने के लिये मानव शरीर मिला है क्या ? पाप नही करेंगे, अन्याय नही करेंगे, भगवान् की तरफ बढेंगे, इस प्रकार करके लोगो

ने मुक्ति पाई। भगवान् राजी हुए। भाई! समय अच्छे काम मे लगाओ, उत्तम काम करो। नीचा काम मत करो। हर भाई-बहिन को चाहिये पाप नही करे। अन्त करण को मैला न करे। सज्जनो, अन्त करण को निर्मल रखो। यह जीवन पवित्र हो जाय। इसीलिये यह मानव शरीर मिला है। अत उत्तम मे उत्तम काम मे लगे रहना है। अन्याय पूर्वक काम नहीं करना है। ईमानदारी से अपना जीवन निर्वाह करना है।

ठीक नही । फिर मैं ठीक कर लूगी । परन्तु आप दान मत करना मेरे लिये । उठा कर दे देना । कन्या को उठा के देता हू, ऐसा देना । दान नही । करदी शादी, शादी करने के बाद पैसा दिया तो खूब दिया पैसा । शादी होकर वह गई ससुराल। खाट पर बैठ गई और पति से कहा – लाओ मेरी जूती लाओ। तेरी जूती मैं उठाऊँ। मेरे बाप ने पैसा दिया है आपको खरीदा है। पता है कि नही । कितने रुपये लगे हजारो रुपये लगे। अब उसने भोजन नही किया तो मा ने पूछा क्या बात है ? क्या चाहिये । मा मेरी जो स्त्री आई है मेरी जूती उठा कर लाओ - यहा तक कहती है। बीदनी ऐसे क्यो कहती है ? हमारे बाप ने इतना खर्चा किया है, कर्ज लेकर खर्च किया है। नौकर है हमारा, उसे लाना पडेगा। छोरे ने कहा मैं तो जूती नही उठाऊंगा, रोटी नही खाऊगा। ऐसा विचार है, मेरे बाप के नौकर हो मेरे बाप ने रुपये दिये हैं। पता है कि नही । ऐसे मुफ्त आये हैं क्या आप । इतना इन्तजाम किया है। १६०००) रु० उधार लिया था। इस प्रकार कहने-सुनने से लडके वालो ने रुपया वापिस किया और लडकी बहू की तरह रहने लगी। कन्याये लज्जा की मूर्ति है। उनका इस प्रकार तिरस्कार करना, समाज मे बडा अपमान होता है। बडे दुख की बात है। खर्चा तो पूरा करते हो फिर काम नही चलता तो बेईमानी करते हो । बडे अन्याय की बात है। इसका नतीजा खराब होगा। जो अन्याय करते हैं उनकी आत्मा को शान्ति नही मिलगी । जो धन दुख देकर लिया जावेगा, वह धन आकर आग लगायेगा। गाय का दूध पीते हे उसे जानते है कि कही रूआ (बाल) न आ जाय । दूध तो प्रसन्नता से दिया जाता है, बाकी तो खून होता है खून ।

बाल आ जाये तो क्या हर्ज है ? अरे रूआ एक भी टूटेगा तो गौ माता को दुख होगा । तो दुख से ली हुई चीज बडी अनिष्टकारी होती है । इसी प्रकार लडके वाले कहे—हम धन नही लेगे हम तो केवल कन्या लेगे । कन्या-दान लेते है, क्यो लेते हैं ? कन्या-दान भी तो दान है, बडा भारी दान है । हम लेगे तो भगवान् पुत्री देगा तो हम भी कन्या-दान करेगे । दहेज की चीजे भी घर मे नही रखते, उसे कुटुम्ब मे परिवार मे लगा देते है । बेटी को, ब्राह्मणो को सबको देते है । घर मे कोई चीज न रह जाय ऐसे बाटते हैं । मिठाई बाटते है । अपने पर तो कर्जा नही रहा, लोग सब राजी हुए । शादी के बाद बहू के पीहर से कोई चीज आती है तो उसकी निन्दा करते है कि क्या चीज भेजी है कैसे भेजी ? बहूरानी सुन रही है, उसको लगे बुरा । भला मा की निन्दा किसको अच्छी लगेगी ? बताओ आप भाई-बहिन बैठे है । मा की निन्दा से हृदय मे दुख हो जाय । बाद मे वह हो जायेगी मालकिन, जो वह चाहेगी फिर तो नही होगा । इस वास्ते उसे प्यार करो, स्नेह करो राजी करो, जो आया उसमे घर से मिला कर बाटो । कहो ऐसा आया है । तो बहू की मा की हो जायेगी बडाई । बहू खुश हो जायेगी । महाराज ! आप कहेगे कि रुपया लगता है । अरे रुपया लगता है तो क्या २०–५० रु० लगाकर आदमी आपका हो जायेगा । बहू आपकी हो जायेगी । सदा के लिये खरीदी जायेगी । १००–५० रु० मे कोई आदमी खरीदा जाय तो कोई महँगा है ? सस्ता ही पडेगा । गहरा विचार करो । व्यवहार भी अच्छा रहेगा । प्रेम भी बढेगा । बहू भी राजी होगी कि मेरी सास ने मेरी माँ की महिमा करी है । इतना खर्च किया । उम्र भर असर

पडेगा, महाराज ! तो भाई ! थोडा-सा त्याग करो । खेती करने वाले, कितना बढिया से बढिया अनाज होता है, उसे मिट्टी मे मिला देते है। क्यो ? खेती होती है। इसी तरह आप भी त्याग करो। उसका फल बडा अच्छा होगा।

ऐसे वस्तुए है उनका सदुपयोग किया जाय। लड़का-लडकी का ठीक तरह से पालन किया जावे। अच्छी शिक्षा मिल जावे। अच्छे भाव उनके बनाये जावे। सद्‌गुणी और सदाचारी बने। पैसे कमाने मे तो आपको समय रहता है, परन्तु बच्चे क्या कर रहे है, कैसे पल रहे हैं, क्या शिक्षा पा रहे हैं, इन बातो की तरफ आप ख्याल ही नही करते। अरे भाई ! वह सम्पत्ति है असली। यह मनुष्य महान् हो जायेगा। कितनी बढिया बात होगी। जितने-जितने महापुरुष हुए है, उनकी मातायें बडी श्रेष्ठ हुई हैं। ऐसी माताओ के बालक बढिया हुए है। सत-महात्मा हुए है। मा का अश आता है बालक मे, इस कारण माताओ को चाहिये कि बालको को अच्छी शिक्षा दे। परन्तु शिक्षा देती हैं उल्टी, लडकियो को कहती हैं कि अपना धन तो रखना अपने पास मे। जब अलग होगी तो वह धन तो पास मे रह जायेगा। ऐसे सिखा कर भेजती है कि काम तू क्यो करे, तेरी जिठानी करे, ननद करे। तू काम मत कर। अब वहाँ कलह होगी, खटपट मचेगी। आपके बहू आयेगी, सीखी हुई आ जावेगी, वह भी ऐसा ही करेगी। काम नही करेगी। कहेगी – हमारी बीदनी काम कोनी करे। आप अच्छा करो तो आपके लिये अच्छा होगा। बुरा करो तो बुरा होगा भाई। कलजुग है–इस हाथ दे, उस हाथ ले। क्या खूब, सौदा नकद है। इस वास्ते आप अपने माता–पिता का, सास–ससुर का आदर करो, सेवा करो, सत्कार करो। तो

आपका असर पडेगा बालको पर। बालक सेवा करेंगे। आपकी वृद्धावस्था मे भी आपकी सेवा करेंगे। परन्तु आप अगर ऐसा करोगे, अपने माइतो की सेवा नही करोगे तो बालक पर भी ऐसा ही असर पडेगा। उनका स्वभाव भी ऐसा ही बनेगा। आप सदा ही ऐसे नही रहोगे। जीते रहोगे तो बूढे भी होओगे। उस समय मे सेवा करेंगे नही, फिर आप कहेगे कि ये सेवा करते नही, बात मानते नही। तो तुमने अपने माइतो (बडो) की सेवा कितनी करी। अब तुम क्यो आशा रखो ? इस वास्ते अच्छा आचरण बनाओ। भला आचरण बढिया है।

आजकल तो मा-बाप बच्चो को व्यसन सिखाते है। खेल सिखाते हैं। चाय पिलाते हैं, छोटे-छोटे छोरो को। आजकल के छोरा दूध नही पी सकते। मलाई आ गई। राम-राम-राम-राम। बडे आश्चर्य की बात है। हमे तो बचपन की बात याद है, दूध पीना होता था। कहते कि क्या है, इसमे तारा (घी की बूंद) तो है ही नही। अच्छा है यह तो उसमे घी डाला जाता—हा अब ठीक है। आजकल घी तो कौन पी सके हिम्मत ही नही है। वह मलाई ही नही पी सकते। चाय बना ली जाय। राम-राम-राम-राम। माथा खराब हो जावे, नीद आवे नही। स्वास्थ्य बिगड जावे। आखे खराब हो जावे। दवाई लगे नही और पैसा लगे ज्यादा, मुफ्त मे। यह दशा हो रही है। तो भाई ! ऐसा मत करो। गायो का पालन करो, उनकी रक्षा करो। आपका तो गाव है, कस्बा है। अकाल पड जाय तो गऊओ के लिए आप खर्च करो तो बडा अच्छा है। मोटर आप रख लेते हो धुएं के लिये, और गाये नही रख सकते। कुत्ता-पालन तो कर लेंगे, गऊ का पालन नही करगे। वाह, वाह, वाह रे कलियुग महाराज। आपने लीला अजब दिखाई। यह दशा हो रहा है इस वास्ते आप बाल-बच्चो को व्यसन मत सिखाओ।

कपडे आदि वढिया (फैशन वाले) पहना कर राजी होते है कि वच्चे हमारे ठीक हो रहे हैं। उनकी आदत विगड रही है वेचारो की। इस वास्ते सादगी रखो, अपने भी सादगी, वाल बच्चो के भी सादगी। अच्छे ढग से काम कराओ, उत्साह रखो काम धन्धा ठीक कराओ। वाल-वच्चो से भी काम कराओ। आपके घर नौकर है, (नौकर रखने की जरूरत है तो रखो)। नौकर रख कर नौकरो के वशीभूत मत हो जाओ। नौकर बढिया काम नही करेगा ठीक वात है। आपको भी सव काम करना आना चाहिये। नौकर जितना काम करते है, आपको आ जाय तो आपको चकमा नही दे सकते। कहे—घी तो इतना लग गया। अरे! लग गया तो हम जानते हैं। इतना घी कैसे लग गया? आप काम करना जानोगे तो आप शासन कर सकोगे। इतना लग गया। हाँ साहव लग गया। तो वस लग गया। कैसे बताये यह बात? काम धन्धा करने मे बेइज्जती समझने लगे आजकल।

माता सीता काम करती थी। रसोई वनाती थी। लक्ष्मण आदि देवर थे, उन्हे बडे प्यार से भोजन कराती थी। स्वय खट करके, परिश्रम करके सासुओ की सेवा करती थी। क्या वह छोटे घर की हो गई? हजारो दासिया थी उनके सामने, हजारो, सैकडो ही नही, लेकिन अपने घर का काम करती थी। अपने घर के काम मे कौन-सी बेइज्जती है भाई? नौकरी करने मे तो वेइज्जती नही समझती, घर के काम करने मे वेइज्जती समझती है। बडे पतन की बात है। अत अपना समय ठीक तरह से लगाओ। अच्छी आदत बनने पर आपकी ग्राहकता हो जायेगी। सब आपको चाहेगे आपकी आवश्यकता पैदा होगी। घर के, वाहर के सब लोग चाहेगे और यदि ऐसा

नहीं करोगे तो समय तो निकल जायेगा हाथो से, और आदत बिगड जायेगी। बिगडी हुई आदत साथ चलेगी, स्वभाव बिगड जायेगा। यह जन्म-जन्मान्तरो तक साथ चलेगा। स्वभाव जिसने अपना निर्मल, शुद्ध बना लिया है, उसने असली काम बना लिया है। साथ मे चलने की असली पू जी सग्रह करली अपने। अपने स्वभाव को शुद्ध बनाओ, निर्मल बनाओ। तो क्या होगा ? ममता छूटेगी। सेवा करने से अहकार छूटेगा। निर्मम-निरहकार हो जाओगे। ससार का काम करते करते ऊची मे ऊची स्थिति को प्राप्त हो जाओगे। बस, लग जाओ, सब काम होगा। इस वास्ते भाइयो मे, बहिनो से कहना है कि सत्सग सुनो और सुनने के अनुसार अपना जीवन बनाओ। ऐसा जीवन बनेगा, तो जीवन निर्वाह होगा और मन मे शान्ति रहेगी। अपने को स्वतन्त्रता होगी। इस वास्ते—"निर्ममो निरहकार स शान्तिमधिगच्छति" ॥२।७१॥ महान् शान्ति की प्राप्ति होगी। भगवद्गीता व्यवहार मे परमार्थ सिखाती है। युद्ध के समय मे कह दिया —

> सुखदु खे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
> ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि ॥२।३८॥

युद्ध से परमात्मा की प्राप्ति हो जाय, काम को भगवान का समझो, उत्साह से करो। सेवा करने वाला पवित्र होगा। पर भगवान् का भजन हरदम करते रहो जिससे सद्बुद्धि कायम रहे। भगवान् को याद करते रहो।

नारायण नारायण नारायण

श्री हरि :

पंचामृत

ध्यान से सुनो—बढिया बात बता रहा हूं। आप जहा रहते है, वहा अपने घर मे रहते है परन्तु अपने घर का तो महात्म्य नही है। भगवान् के दरबार मे रहे तो बडा भारी महात्म्य है। घर आपका तो आपने माना है। घर पहले से भगवान् का ही था। अब भी है और पीछे भी भगवान् का ही रहेगा। मरोगे तो घर साथ थोडे ही चलेगा। यह तो भगवान् का ही हुआ। अत आज से आप मान लो कि भगवान् के घर मे रहते हैं। साक्षात् भगवान् के घर मे ही रहते हो। हरिद्वार आते है तो कहते है—ओ हो! हर की पेडिया है ये तो। वृन्दावन आ गये तो कहते है—भगवान् की लीला-भूमि मे है। अयोध्या मे आ गये तो भगवान् के दरबार मे आ गये। कितनी सस्ती बात है। भगवान् का दरबार मान लो, भगवान् का घर मान लो, तो वही वृन्दावन हो गया। हरदम यही बात रहे कि हम तो भगवान् के घर मे ही रहते है। खास लाडले है हम तो भगवान् के, भगवान् के घर मे रहते है। आज से यह बात मान लो। अपने-अपने घरो को अपना घर मत मानो। अरे! भगवान् का घर मानो। बात सच्ची है। अपना घर तो बीच मे माना है। पहले भगवान् का था और पीछे भी भगवान् का रहेगा। फिर बीच मे अपना कैसे आ गया? छापा मारा है मुफ्त मे! अपना है नही।

एक बात और ध्यान देना—जो भी काम करो, भगवान् का करो। चाहे खेती करो, चाहे घर का काम धन्धा करो, चाहे भोजन करो, और चाहे भजन करो, चाहे कपडा धोओ, चाहे स्नान करो, क्योकि शरीर भी भगवान् का है। तो भगवान् की सेवा के लिये है। खाना-पीना भी भगवान् का काम है। तो काम धन्धा भी भगवान् का ही करते है। नीचे उतरे ही नही, क्योकि ससार सब भगवान् का। सब ससार के मालिक भगवान्। सब शरीरो के मालिक भगवान्। तो शरीरो का और ससार का काम किसका हुआ? भगवान् का ही हुआ! कैसी मौज की बात है। तो भगवान का ही काम करे। भगवान् के दरबार मे रहते है और काम धन्धा भी भगवान् का ही करते हैं—दो बाते हुई।

अब तीसरी बात—घर मे जितनी चीजे है ये भी भगवान् की ही है। घर भगवान् का और आप भगवान् के तो चीजे किसी दूसरे की हो सकती है क्या? माताओ और बहिनो को चाहिये कि उन भगवान् की चीजो को ले कर रसोई बनावे। कहे—ओ हो! ठाकुर जी का प्रसाद बना रही हैं। मै तो ठाकुर जी को भोग लगाने के लिए प्रसाद बना रही हूँ। ठाकुर जी के ही भोग लगावे। ठाकुर जी का भोग लगा कर घर के जितने लोग है, उनको ठाकुर जी के जन (पाहुने) समझ कर प्रसाद जिमावें। तो, उन्हे प्रसाद पवायें कि ये सब ठाकुर जी के प्यारे जन है। ठाकुर जी के ही प्यारे लाडले बालक है। इनको भोजन करा रही हूं। ठाकुर जी की सेवा कर रही हूं। बालक है तो उसे प्यार करके सेवा करे तो मा राजी हो जावे। अपने बच्चे का प्यार करे तो माता राजी हो जावे कि नही? ऐसे ही भगवान् के बालको की सेवा करें तो भगवान्

राजी हो जावे। कैसी मौज की बात है। भगवान् की रसोई बनाई, भगवान् के ही भोग लगाया और भगवान् के ही बालको को भोग पवा दिया। प्रसाद जिमा दिया। अपने भी भोजन करे तो ठाकुर जी का प्रसाद समझते हुए भोजन करे। ठाकुर जी का प्रसाद है। कैसी मौज की बात। केवल भोजन ही नही "तुम्हहि निवेदित भोजन करही। प्रभु प्रसाद पट भूषन घरहीं"। (मानस २/१२८/१) गहना पहने ठाकुर जी के अर्पण कर के। ठाकुर जी का ही कपडा पहने। प्रभु प्रसाद पट भूषण घरही। सब चीजे प्रसाद रूप मे ग्रहण करे तो सब चीजें पवित्र हो जाती है। ठाकुर जी के अर्पण करने पर पवित्र हो जाती है। आपने देखा है कि नही। ठाकुर जी के प्रसाद लगावे और वह दे तो हरेक आदमी हाथ पसारेगा। छोटे से छोटा कणका दो तो वह राजी हो जायेगा। लखपति हो, करोडपति हो, आपके सामने हाथ पसारेगा और प्रसाद का आप छोटा सा कणका दे दे, वह राजी हो जावेगा। वह क्या मीठे का भूखा है? कोई लखपति, करोडपति आपसे प्रसाद माँगे तो कहे, चलो बाजार मे मीठा दिलाऊ आपको। नाराज हो जायेगा। तो वह धनी आदमी कहेगा कि मिठाई का भूखा हू क्या मै? हमे तो प्रसाद चाहिये, प्रसाद। कितना महत्त्व है? बताओ? ठाकुर जी का प्रसाद है। घर मे सब चीजे ठाकुर जी की है। आप करें तो एक बात बतावे बहुत बढिया। कृपा करके कर लो बहुत बढिया बात है। फायदे की बात है। घर मे जितना धन पडा है सब पर तुलसीदल रख दो। जितने गहने-कपडे है तुलसीदल रख दो। जितने रुपये-पैसे पडे हैं तिजोरियो मे सब पर तुलसीदल रख दो। घर पर ही घर दो। जितने भी गाय, भेड, बकरी है, तुलसी-

अपनापन न मानो, वहा सेवा करो अथवा जहा सेवा करो वहाँ अपनापन मिटा दो। एक ही बात हुई।

ठाकुर जी की चीज है, ठाकुर जी की ही सेवा करते है। कुटुम्ब सब ठाकुर जी का है। भगवान् का है। मौज हो गई अपनी तो, भगवान् का ही है सब कुछ। कैसी बढिया बात। आज जेठ का पहिला दिन है। आरम्भ मे ही कर दिया, कैसी मौज की बात है। गगा दशहरा कब आता है भाई! कल है। कौन से महीने मे आता है? वह भी जेठ मे है। और सेठजी का जन्म भी जेठ मे है। नाम ज्येष्ठ सबसे ऊचा। जेठ नाम बडे को कहते है। माइया कहती हैं जेठ जी आ गये। जेठ जी का अर्थ है बडा। अपने पति से बडे हुए जेठ। फिर यह भी जेठ का महीना है। तो बडे महीने के आरम्भ मे बडी बात कर दो। सब भगवान् के अर्पण कर दिया। इसमे बडी बात क्या होती है। और बताओ कैसी मौज की बात है। कैसा दिन मिला है आज। बस, सब ठाकुर जी का है। अपनी चिन्ता मिट जाय, छोरी का सम्बन्ध हो जाय तो मा-बाप राजी हो जाते है कि चिन्ता मिट गई। अच्छे घर चली गई हमारी कन्या, बहुत अच्छा हुआ। तो अपनी सबकी सब कन्या बडे घर चली गई। सब चीज-वस्तु बडे घर चली गई। मौज करो, कितने आनन्द की बात है। तो भगवान् के दरबार मे रहते है। भगवान् का काम करते है और प्रसाद पाते है। कमा कर लाते हैं तो वह भी, कमा करके भगवान् का ही प्रसाद लाते है। और भगवान् के जनो को पवाते हैं। हम भी भगवान् का ही प्रसाद पाते है। हरदम। यह पचामृत है। भगवान् के है हम। भगवान् के दरबार मे रहते हैं। भगवान् का ही काम करते है। भगवान् के प्रसाद से भगवान् के जनो की सेवा करते है।

ौर मैं भी भगवान् का ही प्रसाद पाता हू । यह पचामृत है ।सलो । आज से इस बात को पकड लिया । बस "सर्वं ावेन् माम् भजति" और सब भावो से भगवान् का ही भजन करें । काम करे, सब काम ठाकुर जी का ही है । बताया ना—स्नान करे, शरीर को शुद्ध कर, ठाकुर जी का काम करू मै तो, क्योकि ठाकुर जी का शरीर है । ठाकुर जी का काम करता हू मैं तो, ठाकुर जी पर एहसान कर सकते हैं । महाराज आपका काम करता हू । एक ब्राह्मण कहा करते थे—मैं रोज एक ब्राह्मण जिमाता हू । स्वय भोजन करते थे कि नही । रोज एक ब्राह्मण जिमाता हू । महाराज ! यह कितनी बढिया बात है । रोज ब्राह्मण जिमाना, कितनी बढिया बात है ? ऐसे ही परिवार का परिवार ठाकुर जी का । परिवार के परिवार का पालन करता हू ठाकुर जी का । कैसी मौज की बात । कितनी ऊ चे दर्जे की बात और गुप्त दान दो । पता नही लगे किसी को । ठाकुर जी कहे—मेरे परिवार का पालन करता है भाई ! भगवान् पर एहसान पडेगा । हा, ठीक बात है । यह अपनापन नही रखता है । अपनी ममता नही रखता है । यह तो मेरे परिवार का पालन करता है । "सर्वं भावेन माम् भजति" सब भाव से भगवान् का ही काम हो जाय, यह अव्यभिचारी भक्ति हो जाय । अपने कुछ लेना नही, अपनी ममता नही है । न स्वार्थ है, न ममता, उसमे मेरापन नही, कुछ लेना नही है । घर वाले माने या न माने । सेवा करे या न करे । अपने को तो ठाकुर जी के परिवार का पालन करना है । भजन—उनकी सेवा करनी है । भाई ! परिवार के लोग काम न करे तो राजो । बहुत अच्छी बात है । काम कर दे, अनुकूल चल देगे । हमारा किया हुआ तो बिक्री हो जायगा । सेवा की हुई बिक्री

हो जायेगी। इस वास्ते यदि वे कुछ भी नही करें और दुख दें तो अच्छा है। कष्ट द। सासू भी दुख दे, वहू भी दुख दे, देवरानी-जिठानी, ननद आदि सब दुख देवे। इतने राजी हो गये, इतने राजी हो गये, वहुत ही निहाल हो जावे। अपने तो सेवा करनी है और ये दुख देवे तो डवल फायदा हो गया। एक तो सेवा का लाभ होगा और ये दुख दे तो पाप कटेंगे। वोलो! हरदम मौज रहेगी। दुख कव रहेगा, वताओ? दुख देने मे भी आनन्द होगा। दुख की जगह ही नही रही। सव गली वन्द हो गई। तो वह सर्वंवित है। सब जानने वाला है। ठीक तरह से समझ गया। यदि सुखी और दुखी होता है तो समझा नही। ससार से सुखी और दुखी होता है तो समझा नही। हम तो मस्ती मे वैठे है। अपने को कोई किंचिन्मात्र भी दुख नही। सबका भरण-पोषण करते हैं। सब का पालन करते है। दुख है ही नही। तो ऐसे भगवान् के भक्तो को दुख होता ही नही। वे हरदम मौज मे रहते है। इतने मस्त रहते हैं कि उनके सग से मस्ती हो जाती है। ठाकुर जी की याद करने से बन्धन टूट जाय। नाम लेने से, याद करने से, लीला सुनने से पाप नष्ट हो जाये इतने महान् पवित्र।। **"पवित्राणाम् पवित्रोयम् मगलानाम् च मगलम्"** तो **"सक्ष्र्वविद्भजति मा सर्वभावेन भारत"** सब भाव से मेरा ही भजन करता है, चलते-फिरते, हरदम

मूल मे बात क्या है? एक छोटी सी बात है। "मैं भगवान् का ही हूँ" बस और का नही हूँ। सेवा करने के लिये ससार का, परन्तु किसी से मतलब निकालने के लिये किसी का नही हूँ। केवल भगवान् का हूँ केवल अपने को भगवान् का मान लो तो घर भगवान् का, दरबार भगवान् का, परिवार भगवान् का, सम्पत्ति भगवान् की, काम भगवान् का, प्रसाद

भगवान् का, सब भगवान् का हो जायेगा। यह बात एकदम सच्ची है। आपको बतावे बिल्कुल अनुभव की बात। जिस बालक को मा ने अपना माना है। अपना बालक है। मेरा छोरा है। ऐसा जिसका भाव है। वह छोरा दौड कर गोद मे चढ जाय तो मा हँसेगी। पीछे से पीठ पर चढ जाय तो मा हँसेगी। बोलो, बडा भारी काम कर दिया। खेलता है तो मा हँसेगी और जानकर ऊ ऊ ऊ कर के रोता है। तो देखो ठगाई करता है मेरे से, माँ हसती है। छोरे की वह कौन सी क्रिया है, जिससे मा को प्रसन्नता नही होती है। वह बालक जो करता है माँ उससे राजी होती है। कारण क्या है? छोरा मेरा है। और क्या? ऐसे ही हम भगवान् के बन कर जो भी करे, हमारी हर क्रिया भगवान् का भजन हो जाय। भजन क्या? भगवान् की प्रसन्नता। कुछ भी काम करो भगवान् खुश होते रहते हैं। मेरा बच्चा है। यह मेरा बालक खेल रहा है। कैसी मस्ती है? बात एक ही है। भगवान् का होना। सच्ची बात है। इतने बैठे है। आपसे पूछा जाय कि आपने इस घर मे जानकर जन्म लिया है, क्या? जीते हो तो जानकर जीते हो क्या? जानकर जीव तो मरे कौन भाई, मरे ही नही। स्वस्थ शरीर मे रहते हो तो जानकर रहते हो क्या? अगर जानकर रहते हो तो बीमार मत पडो। शरीर मे जो बल-बुद्धि है वह जानकर प्राप्त की है क्या? तो बूढे मत हो। पराधीन मत हो। सो तो हो जाते हो। अभिमान घर का है। और कुछ नही। जैराम जी की है। कोरा अभिमान करते हो, समझे। इस वास्ते हम ठाकुर जी के हैं। ठाकुर जी के आधीन है। ठाकुर जी जो शक्ति दें, वही करते है।

हनुमान जी ने कितना काम किया? राम जी लका मे गये तो पुल बनवाया। पुल बना के पार पहुँचे। परन्तु हनुमान जी

कूद गये । वल किसका है ? वल ठाकुर जी का है। "बार-बार रघुबीर सँभारी", "प्रविसि नगर कीजे सब काजा। हृदयँ राखि कोसलपुर राजा" ।। मैं भगवान् का दास हू। वाल्मीकि रामायण मे आता है कि हनुमान जी ने ऐसी गर्जना करी कि सौ रावण भी आ जाये, सौ हजार रावण भी आ जाये तो मेरा कुछ नही बिगाड सकते। मैं ठाकुर जी का दास हू। मेरे सामने हजार रावण भी कुछ नही कर सकते। मैं ठाकुर की का दास हू।

अपना अभिमान करके दुख पा रही है दुनिया। तो कृपा करके अभिमान छोड दो, भगवान् के अर्पण कर दो कि हम तो ठाकुर जी के हैं। अपनी शक्ति सब ठाकुर जी के काम मे लगानी है। "त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये" "सर्व भावेन भजति माम्" सब भाव से भगवान् को भजते है। नाम जप भजन है, कीर्तन भजन है, पाठ भी भजन है, सुनना, कहना, सब भजन है। और तो क्या "सर्व भावेन भजति" उठना, बैठना, खाना, पीना, सोना, जागना, भगवान् का काम कर रहे हैं। कितनी सस्ती बात है ? कितनी ऊँचे दर्जे की बात है ? कितनी श्रेष्ठ बात है ? और कितनी सुगम ? अभी, अभी आप मान लो तो निहाल हो जाओ अभी, अभी। हम तो भगवान् के अर्पण हो गये और भगवान् का ही काम करेगे। काम हमारा है ही नही। यह हमारा घर नही तो इसका काम हमारा नही। हमारा कुछ है ही नही। सब भगवान् का काम है।

मैंने सतो से सुना है कि जिनके अपना करके कुछ नही है, सब भगवान् का है। अपना कुछ है ही नही। न मन अपना है, न बुद्धि अपनी है, न शरीर अपना है, न प्राण अपने

है न इन्द्रियाँ अपनी हैं, न घर है सम्पत्ति अपनी है। है ही नही अपनी। सब चीजे ठाकुर जी की है, ठाकुर जी की। हा रहते है, मौज रहतो है। आनन्द से ठाकुर जी के अर्पण कर दी सब चीजे। सब भगवान् के अर्पण करदी। निहाल हो गये। मस्ती मे रहते है हरदम। सतो की एक बात सुनी है हमने। सत बडे विचित्र होते है। बाजार मे जाते, बहुत बढिया-बढ़िया मिठाई रखी है। फल पडे है। यहाँ दुकान सजी हुई है। जहा देखते बढिया, वही खडे होते गये, ठाकुर जी भोग लगाइये। बर्फी है, इमरती है, जलेबी है भोग लगाइये। लड्डू है, भोग लगाइये। बस खडे हो कर मस्ती से भोग लगा दे। अर्पण कर दो, ठाकुर जी के भोग लगाइये। ठाकुर जी के अर्पण कर दो। आप कहो। क्या जोर आवे इसमे ? तो करो आप भी। कौन मना करता है ? जहाँ बढिया चीज देखो, ठाकुर जी के अर्पण कर दो।

सब कुछ ठाकुर जी का है। अब क्या करे ? अब तो मौज करगे। अब कोई काम हमारा तो रहा नही। केवल ठाकुर जी का काम है, ठाकुर जी का नाम है, ठाकुर जी का चितन है, ठाकुर जी की बात सुननी है। हमारा काम तो है ही नही। आपका काम क्या रहा ? ठाकुर जी का काम करते है। सब ससार के मालिक भगवान् है। तो मालिक के चरणो मे मालिक की चीज अर्पण करते हुए आपको क्या जोर आता है ? बताओ, उनकी है भैया। आप कहते हो मेरी है, मेरी। पर कितने दिनो से, कितने वर्षो से मेरी कहते हो ? कितने वर्षो तक मेरी कहते रहोगे ? आखिर तो वह रहेगी ठाकुर जी की ही। तो जीते जी ही भगवान् को अर्पण कर दो अपने हृदय से, मौज हो जायेगी। कितनी सुगम, कितनी वडी भारी वात।

सतो की साखी आती है—"राम नाम की सम्पदा दो अन्तर तक घूरा। कितनी गुप्ती बात है, कहो बतावे कूरा"॥ कौन बताता है, ऐसी बढ़िया बात। कितनी बढ़िया बात और कितनी सुगम! कितनी ऊँचे दर्जे की। कितनी निश्चिन्तता की, निर्भयता की, आनन्द की बात है। न चिन्ता है, न भय है, न उद्वेग है, न जीने की इच्छा है, न मरने की इच्छा है। हमारी इच्छा कुछ नही। ठाकुर जी की इच्छा मे इच्छा मिला दी। अब ठाकुर जी जैसा करें, जैसा रखे। "जाहो विधि राखें **राम ताहि विधि रहिये। सीताराम सीताराम सीताराम कहिये**"। अपनी कोई माग नही, कोई इच्छा नही। आनन्द की बात है। कितनी सरल बात, कितनी सुगम बात। आफत हमारी मिट जाय और भगवान् राजी हो जाये। मेरी मानने से चिन्ता रहती है। मेरा कमरा है। अमुक चीज वहा पडी है। कपडा तो वहा सुखाया था। कोई ले जायेगा तो चिन्ता रहती है। ठाकुर जी को अर्पण कर दिया तो कैसी मौज है। तो गया तो ठाकुर जी का, रहा तो ठाकुर जी का।

नारायण नारायण नारायण

सब के सब कर्म परमात्मा के समर्पण कर दो—यह भक्तियोग है। ससार से मिली सामग्री ससार की सेवा मे लगा दो। ससार से मुक्त होने की यह सरल युक्ति है।

× × × ×

अपने कर्त्तव्य व धर्म का पालन करने मे कष्ट आता है तो वह मुक्ति देता है।

श्री हरि:

शरणागति

भगवान् ने भगवद्गीता में सबसे श्रेष्ठ भक्तियोग को कहा है जो कि शरणागति है। उपदेश भी आरम्भ हुआ है अर्जुन के शरण होने से और अन्तिम उपदेश यही दिया है कि-

सर्व धर्मा न्परित्यज्य मामेक शरण व्रज ।
अह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।

(गीता १८/६६)

भगवान ने 'गुह्य' कहा, 'गुह्यतर' कहा, 'गुह्यतम' कहा और 'सर्वगुह्यतम' (१८/६४) कहा। तो सबसे अत्यन्त गोपनीय बात भगवान कहते हैं "मामेक शरण व्रज"। मेरी एक की शरण हो जा। अर्जुन ने पूछा था कि "धर्मसम्पूढचेता त्वा पृच्छामि" धर्म के निर्णय करने से मेरी बुद्धि काम नही करती, इस वास्ते आपसे पूछता हूँ।

भगवान कहते है कि जिसका निर्णय तू नही कर सकता, वह मेरे अर्पण कर दे। 'सर्वधर्मान्परित्यज्य'–मेरे मे सब अर्पण कर दे। एक मेरी शरण हो जा। अर्जुन धर्म का निश्चय नही कर सकता था कि युद्ध करूँ या न करूँ। तो भगवान कहते हैं कि यदि तुझको पता नही तो इस दुविधा मे मत पड। इन सबको छोडकर एक मेरे शरण हो जा। मैं तेरे को सपूर्ण पापो से मुक्त कर दूँगा। तू चिन्ता मत कर। तो इसमे सब तरह के आश्रय का त्याग कर देना है। किसी का आश्रय नही रखना है। मन मे किसी अन्य का भरोसा, और आश्रय सब

छोड दे। अनन्य भाव से मेरे शरण हो जा। साधन और साध्य इसी को मान। यह शरणागति की सबसे गोपनीय और सबसे बढिया बात भगवान ने कही।

इसमे एक बहुत विशेष गहरी रहस्य की बात है 'अह त्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुच' मै तुझे सपूर्ण पापो से मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता मत कर। यह बहुत विलक्षण बात कही। इसका यह तात्पर्य नही है तू शरण होजाये तो तेरा पाप मै नष्ट करूँगा। अर्जुन को लोभ दिया गया हो, ऐसी बात नही है। तू अनन्यभाव से शरण हो जा, धर्म का परवाह मत कर तू धर्म का त्याग करेगा तो पाप का ठेका मेरे आ गया। गीता मे कहा है 'नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते' (गीता २/४०) निष्काम भाव से जो कर्म करता है उसका उल्टा फल नही होता। अधर्म होता ही नही। तू केवल मेरी शरण होजा। इसके बाद कोई चिन्ता मत कर। शरण होने के बाद मन मे कोई चिन्ता भी हो जाय, किसी तरह की विपरीत भावना भी पैदा हो जाय, मन भी परमात्मा मे न लगे, ससार के पदार्थो मे राग-द्वेष भी हो जाय, तत्परता और निष्ठा न दिखाई दे-इस तरह की कमिया मालूम देवे तो उन कमियो के लिये तू चिन्ता मत कर-यह तात्पर्य है। भगवान की शरण होने पर उसको किसी तरह की चिन्ता नही करनी चाहिये। निश्चिन्त हो जाना चाहिये। निर्भय और नि शोक होना चाहिये। नि शक होना चाहिये। लोक मे क्या दशा होगी, परलोक मे क्या होगा, यहा यश होगा कि अपयश होगा, निन्दा होगी कि स्तुति होगी, ठीक होगा कि बेठीक होगा, लाभ होगा कि हानि होगी, लोग आदर करेगे या निरादर करेगे—इन बातो की तरफ ख्याल ही मत कर। केवल अनन्य शरण होजा। और सब आश्रय छोड दे।

तू भय मत कर। शोक भी मत कर और शका भी मत कर। जो वस्तु चली गई उसका शोक होता है। और विचार मे वात आती है तो शका होती है। शोक और शका का भी त्याग कर दे। 'मा शुच' का तात्पर्य है कि तू किसी तरह का किंचित मात्र भी सोच मत कर।

मैं तो भगवान के शरण हो गया। जैसे कन्यादान करने पर लडकी समझ लेती है मेरा तो विवाह हो ही गया। वस एक मे सम्वन्ध हो गया। अब उम्र भर यह अटल अखण्ड सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध के बाद पति रहे न रहे, वह आदर करे, अनादर करे छोड दे, सन्यासी हो जाय। किसी तरह करे। हमारी भारत की नारी ऐसी है कि एक जिसको स्वीकार कर लिया, तो कर लिया, इसी का सिद्धान्त सन्तो ने दिया है कि पतिव्रता रहे पति के पासा यू साहिव के ढिग रहे दासा। दास भगवान के पास ऐसे रहे जैसे पतिव्रता रहती है। उसके एक ही मालिक, एक हीतरफ उसका विचार रहता है। उसकी राजी मे राजी। उसकी सेवा करना। एकइ धर्म एक व्रत नेमा। कायँ वचन मन पति पद प्रेमा।।' मानस ३/४/५

सास, ससुर देवर, जेठ, जेठानी, देवरानी, ननद आदि की सेवा करती है। समय पर अतिथि सत्कार भी करती है। साधुओं को भी भिक्षा दे देती है, परन्तु अपना सबंध किसी के साथ नहीं। देवर, जेठ आदि से सम्बन्ध है तो पति के नाते से ही है। स्वतंत्र सम्बन्ध किसी से कुछ भी नहीं। इसी तरह एक व्रत लेले कि केवल भगवान से ही मेरा सम्बन्ध है। और किसी से कुछ सबंध नहीं है। नियम है तो भगवान के भजन का, और भगवान के शरण होने का। एक यही नियम है। ऐसे अनन्य भाव से मेरे शरण होजा। किसी अन्य का आश्रय न रहे।

दूसरो की सेवा करने मे, काम कर देने मे, शास्त्र के अनुसार सुख पहुंचाने मे दोष नही है। दोष है अपने कुछ चाहने में, भगवान के शरण होने पर किसी से कभी भी किंचित मात्र भी चाहना न हो। **"मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ।।"** मानस (७/४५/२) भगवान का दास कहलवा करके किसी से भी किंचित मात्र भी आशा रखता है तो भगवान का दास कहाँ हुआ ? जिस चीज की आशा रखता है, उसी का दास है। भगवान से भी धन, सम्पत्ति आदि चाहता है तो वह भगवान का दास नही है। वह धन,

आ भी जायगी तो ठहरेगी नही। चिन्ता तभी तक आती है, जब तक आप अपने मे कुछ बल का अभिमान रखते है। बल का अभिमान कैसा ? चिन्ता आती है तो इसमे एक सूक्ष्म बात रहती है। चिन्ता हुई कि धन नही है। तो अर्थ होता है कि मैं धन कमा सकता हूँ, ले सकता हूँ, और जब मैं धन कमा सकता हूँ तो यह अपने बल का भरोसा, व अहकार हुआ। धन के अभाव का तो अनुभव हो जायगा, परन्तु चिन्ता नही होगी। ऐसे कोई रोग हो जाय तो क्या करूँ ? रोग दूर नही होता—ऐसी चिन्ता नही होगी। रोग होता है, अच्छा तो नही लगता। परन्तु रोग दूर नही होता, ऐसी चिन्ता नही होगी। चिन्ता तभी होती है, जब रोग दूर करने मे अपने पर विश्वास होता है, अपना कोई भरोसा होता है। अपने पर भरोसा बिल्कुल मत रखो। अपने बल का, विद्या का, बुद्धि का, योग्यता का, अधिकार का बल बिल्कुल नही रखना है। "सुने री मैने निर्बल के बल राम।" सर्वथा केवल भगवान का ही बल है, हमारा बल कुछ नहीं। तो बल रहने से चिन्ता होती है। यह बारीक बात है, भाई लोग ध्यान दे। जब कभी चिन्ता होती है तो इसका अर्थ यह होता है कि मैने यह नही किया, वह नही किया यह कर लूगा। ऐसा कर लूगा। उसे मै कर लूगा, तब चिन्ता होती है।

शरण तो हो गया पर भगवान् के दर्शन ही नही हुए। भगवान के चरणो मे प्रेम ही नही हुआ। मेरी तो ऐसी अनन्य गाढ प्रीति भी नही हुई। तो इन बातो के न होने का अभाव तो खटकता है पर चिन्ता नही होनी चाहिए, क्योकि यह मेरे हाथ की बात नही। मै तो भगवान् को ही पुकारूँ। भगवान् का ही हूँ। अब उनकी मर्जी होगी तो प्रेम करगे, मर्जी होगी

तव दर्शन देंगे, मर्जी होगी तव अनन्य भक्त वनायेंगे। अव वे मर्जी आवे जैसा बनाओ। अपने-आप को तो दे दिया। जैसे कुम्हार मिट्टी को गीली करके रौंदता है। वह रौंदता है तो मर्जी है, बनाता है तो मर्जी है, पहिले सिर पर उठा कर लाया तो मर्जी है, चक्के पर चढाकर घुमाता है तो उसकी मर्जी है। मिट्टी नही कहती कि क्या वनाते हो? घडा वनाओ, शकोरा वनाओ, मटकी वनाओ, चाहे सो वनाओ। मिट्टी अपनी कोई मर्जी नही रखती। इसी तरह हमे प्रम की कमी मालूम पडती है। पर यह भी मालूम न होने देना अच्छी बात है कि मेरे को क्या मतलव प्रेम से, दर्शन से भक्ति से। मैं तो भगवान का हूँ—ऐसे निश्चिन्त हो जाये। कमी मालूम देना दोप नही है, पर कमी की चिन्ता करना दोष है। अपना वल कुछ नहीं है। अपने तो उसके चरणो मे आ गए। अव उसके है। अब वह चाहे जन्म-मरण दे। जैसी मर्जी हो, वैसे करो। यह सकल्प-विकल्प सव तरह के छोड करके केवल मेरी शरण हो जाय।

तू चिन्ता कुछ भी मत कर। भक्त के जितनी निश्चिन्तता अधिक होती है, उतना ही प्रभाव भगवान की कृपा का विशेप पडता है, और जितनी वह खुद चिन्ता कर लेता है, उतना वह प्रभाव मे बाधा दे देता है। तात्पय, भगवान के शरण होने पर भगवान की तरफ से जो कृपा आती है, उस अटूट, अखण्ड, विलक्षण, विचित्र कृपा मे वाधा लग जाती है। भगवान देखते हैं कि वह तो खुद चितित है तो खुद ठीक कर लेगा, तो कृपा अटक जाती है। जितना निश्चिन्त हो सके, निर्भय हो सके, नि शोक हो सके, नि शकहो सके, सकल्प-विकल्प से रहित हो सके, उतनी ही अच्छी शरणागति

है। कह दो कि अपनी ओर कोई भार ही नही है। अपनी तरफ कोई बोझा ही नही है, अपनी तरफ कोई जिम्मेदारी नही है। अब तो सर्वथा हम भगवान के हो गए।

भगवान से कुछ भी चाहता है कि मेरे ऐसा हो जाय तो वह भगवान से अलग रहता है। जैसे एक अरबपति का लडका पिता से कहे कि मेरे को दस हजार रुपये मिल जाये। इसका अर्थ होता है कि वह पिता से अलग होना चाहता है। वास्तव मे करोडो, अरबो मेरे ही तो है। मेरे को कुछ नही लेना है। लेने की इच्छा होती है तो वह भगवान से अलग कर देती है, भगवान की आती हुई कृपा मे आड लगा देती है। जैसे बिल्ली का बच्चा होता है, उसे अपना ख्याल ही नही रहता कि कहाँ जाना है, क्या करना है। वह तो अपनी माँ पर निर्भर रहता है। बिल्ली उसे पकड लेती है तो बच्चा अपने पजे सिकोड लेता है। कुछ भी बल नही करता। अब जहाँ मर्जी हो वहाँ रख दे, चाहे जहाँ ले जाय, उस बिल्ली की मर्जी। ऐसे ही भगवान का भक्त उसी की तरफ देखता है। उसके विधान मे प्रसन्न रहता है। उसे सुख-दु ख, सम्पत्ति विपत्ति, सयोग-वियोग, आदर-निरादर, प्रशसा-निन्दा से कोई सरोकार ही नही। अपनी तरफ से कोई चिन्ता नही, विचार आ जाय तो भगवान को पुकारे, 'हे नाथ मैं क्या करूँ ?" इस तरह से चिन्ता छोडकर उसके शरण हो जाय।

प्रश्न शरणागत का जीवन कैसा होता है ?

उत्तर गीता के अनुसार कर्त्तव्य-कर्म का त्याग नही करना चाहिये। अपितु सम्पूर्ण धर्मो को यानी कर्मो को भगवान के अर्पण करना ही सवश्रष्ठ धर्म है। जब सम्पूर्ण कम भगवान

के समर्पण करके भगवान के ही शरण होना है तो फिर अपने लिये धर्म के निर्णय की जरूरत ही नही रही ।

मैं भगवान का हूँ और भगवान मेरे है–इस अपनेपन के समान योग्यता, पात्रता, अधिकार आदि कोई भी नही है । यह सम्पूर्ण साधनो का सार है । इस वास्ते शरणागत को अपनी वृत्तियो आदि की तरफ न देखकर भगवान के अपनेपन की तरफ ही देखते रहना चाहिये ।

मेरे शरण होकर तू चिन्ता करता है, यह मेरे प्रति अपराध है, शरणागति मे कलक ह और इसमे तेरा अभिमान है । मेरे शरण होकर मेरा विश्वास, व भरोसा न रखना–यही मेरे प्रति अपराध है और अपने दोषो की चिन्ता करना तथा मिटाने मे अपना बल मानना–यह तेरा अभिमान है । इनको तू छोड दे । तेरे आचरण, वृत्तिया, भाव शुद्ध नही हुए हैं, दुर्भाव पैदा हो जाते है और समय पर दुष्कर्म भी हो जाते हैं तो भी तू इनकी चिन्ता मत कर । इन दोषो की चिन्ता मैं करूँगा ।

भगवान जो कुछ विधान करते है, वह ससार के सम्पूर्ण प्राणियो के कल्याण के लिये ही करते है । बस, शरणागत की इस तरफ दृष्टि हो जाय तो फिर उसके लिये कुछ करना बाकी नही रहता ।

जो मनुष्य सच्चे हृदय से प्रभु की शरणागति को स्वीकार कर लेता है तो उसका यह शरण-भाव स्वत ही दृढ होता चला जाता है ।

भगवान् भक्त के अपनेपन को ही रखते है, उसके गुण-अवगुणो को नही देखते अर्थात् भगवान् को भक्त के दोष दीखते ही नही ।

शरणागत भक्त—"मै भगवान का हू आ[illegible] [illegible] है" इस भाव को दृढता से पकड लेता है तो उसकी चिन्ता, भय, शोक, शका आदि दोषो की जड कट जाती है, अर्थात् दोषो का आधार कट जाता है। क्योकि सभी दोष भगवान की विमुखता पर ही टिके हुए रहते है।

भगवान के शरण होकर ऐसी परीक्षा न करे कि जब मै शरण हो गया हूँ, तो ऐसे लक्षण मेरे मे नही है तो मै भगवान के शरण कहाँ हुआ ?

इस प्रकार सन्देह, परीक्षा और विपरीत भावना—इन तीनो का न होना ही भगवान के सम्बन्ध को दृढता से पकडना है। शरणागत भक्त मे तो ये तीनो ही बाते आरम्भ मे ही मिट जाती है।

मनुष्य जब भगवान के शरण हो जाता है, तो वह प्राणियो से, सम्पूर्ण विघ्न-बाधाओ से निर्भय हो जाता है। उसको कोई भी भयभीत नही कर सकता। उसका कोई भी कुछ बिगाड नही सकता।

जीव का उद्धार केवल भगवत्कृपा से ही होता है। साधन करने मे तो साधक निमित्त मात्र होता है, परन्तु साधन की सिद्धि मे भगवत्कृपा ही मुख्य है। इस दृष्टि से भगवान के साथ किसी तरह का सम्बन्ध जोड लिया जाय, वह जीव का कल्याण करने वाला है। जिन्होने किसी प्रकार भी भगवान से सम्बन्ध नही जोडा, उदासीन ही रहे, वे तो भगवान की प्राप्ति से वञ्चित ही रह गये।

भगवान का अनन्त ऐश्वर्य है, माधुर्य है, सौन्दर्य है, भगवान की अनेक विभूतियाँ है, इन सब की तरफ शरणागत

भक्त देखता ही नही । वह तो केवल भगवान के शरण हो जाता है और उसका केवल एक भाव रहता है कि मैं केवल भगवान के शरण हूँ, और केवल भगवान मेरे है । शरणागत की दृष्टि तो केवल भगवान पर ही रहनी चाहिये, भगवान के गुण, प्रभाव आदि पर नही ।

प्राणी ज्यो-ज्यो दूसरा आश्रय छोडता जाता है, त्यो ही त्यो भगवान का आश्रय दृढ होता चला जाता है, और ज्यो ही भगवान का आश्रय दृढ होता है, त्यो ही भगवत्कृपा का अनुभव होने लगता है । जब सर्वथा ही भगवान का आश्रय ले लेता है तो भगवान की पूर्ण कृपा उसको प्राप्त हो जाती है ।

भगवान गीता (१८/५७) मे अर्जुन से कहते हैं कि चित्त से सम्पूर्ण कर्मो को मेरे मे अर्पण करके तू मेरे परायण हो जा और समता का आश्रय लेकर मेरे मे चित्त वाला हो जा । इस श्लोक मे भगवान ने चार बाते बतायी—(१) सपूर्ण कर्मो को मेरे अर्पित कर दे । (२) स्वय को मेरे अर्पित कर दे (३) समता का आश्रय लेकर ससार का सम्बन्ध विच्छेद कर दे, और (४) तू मेरे साथ अटल सम्बन्ध कर ले । शरणागत के लिए यह बाते आवश्यक है ।

साधन काल मे जीवन-निर्वाह की समस्या, शरीर मे रोग आदि विघ्न बाधाएँ आती है परन्तु उनके आने पर भी भगवान की कृपा का सहारा रहने से साधक विचलित नही होता । उन विघ्न बाधाओ मे उसको भगवान की विशेष कृपा दीखती है ।

श्री हरि:

की चंचलता कैसे दूर हो ?

मनुष्य ने यह समझ रखा है कि मन को कब्जे मे करना बहुत आवश्यक है। मन नही लगा तो कुछ नही हुआ। राम राम करो तो क्या फायदा ? मन तो लगा ही नही। मन लग जाय तो ठीक हो जाय। परन्तु मन का लगना या न लगना खास बात नही है। मन मे ससार का जो राग है, आसक्ति है, प्रियता है, यही अनर्थ का हेतु है। मन लग भी जायगा, तो सिद्धियो की प्राप्ति हो जायगी, विशेपता आ जायगी, परन्तु जब तक ससार मे आसक्ति है, कल्याण नही होगा। जब भीतर से राग और आसक्ति निकल जायगी, तब जन्म-मरण छूट जायगा। दु ख होगा ही नही, क्योकि राग और आसक्ति ही सब दु खो का कारण है।

पदार्थो मे, भोगो मे, व्यक्तियो मे, वस्तुओ मे, घटनाओ मे जो राग है, मन का खिचाव है, प्रियता है, वही दोपी है। मन की चचलता इतनी दोषी नही है। वह भी दोपी तो है, परन्तु लोगो ने केवल चचलता को ही दोपी मान रखा है। वास्तव मे दोषी है राग, आसक्ति और प्रियता। साधक के लिये इस बात को जानने की बडी आवश्यकता है कि प्रियता ही वास्तव मे जन्म-मरण देने वाली है।

ऊँच-नीच योनियो मे जन्म होने का हेतु गुणो का सग है। आसक्ति और प्रियता की तरफ तो ख्याल ही नही है, पर -- की तरफ ख्याल होता है। विशेप लक्ष्य इस बात का

रखना है कि वास्तव मे प्रियता बाधने वाली चीज है। मन की चचलता उतनी बाधने वाली नही हे। चचलता तो नींद आने से भी मिट जाती है, परन्तु राग उसमे रहता है। राग (प्रियता) को लेकर वह सोता है।

मेरे को इस बात का बडा भारी आश्चर्य है कि मनुष्य राग को नही छोडता ! आपको रुपये बहुत अच्छे लगते है। आप मान-बडाई प्राप्त करने के लिये १०-२० लाख रुपये खर्च भी कर दोगे, परन्तु रुपयो मे जो राग है, वह आप खर्च नही कर सकते। रुपयो ने क्या बिगाडा है ? रुपयो मे जो राग है, प्रियता है, उसको निकालने की जरूरत है। इस तरफ लोगो का ध्यान ही नही है, लक्ष्य भी नही है। इस वास्ते आज कहता हूँ। आप इस पर ध्यान दे। यह जो राग है, इसकी महत्ता भीतर मे जमी हुई है। वर्षो से सत्सग करते हैं, विचार भी करते हैं, परन्तु उन पुरुषो का भी ध्यान नही जाता कि इतने अनर्थ का कारण क्या है ? व्यवहार मे, परमार्थ मे, खाने-पीने, लेन-देन मे सब जगह राग बहुत बडी बाधा है। यह हट जाय तो आपका व्यवहार भी बडा सुगम और सरल हो जाय। मीठा हो जाय। परमार्थ और व्यवहार मे भी उन्नति हो जाय।

विशेष बात यह है कि आसक्ति और राग खराब हैं। सत्सग की बाते सुन लोगे, याद कर लोगे, पर राग के त्याग के बिना उन्नति नही होगी। तो प्रश्न आपने किया कि मन की चचलता कैसे दूर हो ? पर मूल प्रश्न यह होना चाहिए कि राग और प्रियता का विनाश कैसे हो ? भगवान ने गीता मे इस राग को पाँच जगह बताया है।

"इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ"।

(गीता ३/३४)

तो स्वय मे, बुद्धि मे, मन मे, इन्द्रियो मे और पदार्थों मे—यह पाँच जगह राग बैठा है। पॉच जगह मे भी गहरी रीति से देखा जाय तो मालूम होगा कि "स्वय" मे जो राग है, वही शेष चार मे स्थित है। मूल मे यह राग "स्वय" मे स्थित है। अगर "स्वय" का राग मिट जाय तो आप निहाल हो जाओगे। चित्त चाहे चचल हो, परन्तु राग के स्थान पर भगवान मे प्रेम हो जाय तो राग का खाता ही उठ जायगा। भगवान मे आकर्षण होते ही राग खत्म हो जायगा।

भगवान से प्रेम हो, इसकी बडी महिमा है। इसकी महिमा ज्ञान और मोक्ष से भी अधिक कहे तो अत्युक्ति नही। इस प्रेम की बडी अलौकिक महिमा है। इससे बढकर कोई तत्त्व है ही नही। ज्ञान से भी प्रेम बढ कर है। उस प्रेम के समान दूसरा कुछ नही है। भगवान मे प्रेम हो जाय तो सब ठीक हो जाय।

वह प्रेम कैसे हो ? ससार से राग हटने से भगवान मे प्रेम हो जाय। राग कैसे हटे ? भगवान मे प्रेम होने से। दोनो ही बाते हैं—राग हटाते जाओ और भगवान से प्रेम बढाते जाओ। पहले क्या करे ? भगवान मे प्रेम बढाओ। जैसे आजकल रामायण का पाठ हो रहा है। अगर मन लगाकर और अर्थ को समझकर पाठ किया जाय तो मन बहुत शुद्ध होता है। राग मिटता है। भगवान की कथा प्रेम से सुनने से भीतर का राग स्वत ही मिटता है और प्रम जागृत होता है। उसमे एक बडा विलक्षण रस भरा हुआ है। पाठ का साधारण अभ्यास करने से आदमी उकता जाता है, परन्तु जहाँ रस मिलने लगता है, वहाँ आदमी उकताता नही। तो इसमे एक विलक्षण रस भरा है—प्रेम।

आप करके देखो। उसमे मन लगाओ। भक्तो के चरित्र पढो, उससे बडा लाभ होता है, क्योकि वह हृदय मे प्रवेश करता है। जब प्रेम प्रवेश करेगा तो राग मिटेगा, कामना मिटेगी। उनके मिटने मे निहाल हो जाओगे। यह विचारपूर्वक भी मिटता है, पर विचार से भी विशेप काम देता है प्रेम।

प्रेम कैसे हो ? जो सत, ईश्वर भक्त जीवन मुक्त हो गये है, उनकी कथाये सदा मन को शुद्ध करने के लिये है। मन की शुद्धि को आवश्यकता बहुत ज्यादा है। मन की चचलता की अपेक्षा अशुद्धि मिटाने की बहुत ज्यादा जरूरत है। मन शुद्ध हो जायगा तो चचलता मिटना बहुत सुगम हो जायगा। निर्मल होने पर मन को चाहे कही पर लगा दो।

"कपट, छल छिद्र" भगवान को सुहाते नही। परन्तु इससे आप डरते ही नही। झूठ बोलने से, कपट करने से, धोखा देने से – इससे तो वाज आते ही नही। इसको तो जान-जान कर करते हो। तो मन कैसे लगे ? बीमारी तो तुम बढा रहे हो, अपनी तरफ से बना रहे हो। तो आप ख्याल करो। इसमे जितनी आसक्ति है, प्रियता है, वह बहुत जबर्दस्त है। विचार करके देखो। आसक्ति बहुत गहरी बैठी हुई है। पदार्थो का महत्व बहुत भीतर मे बैठा हुआ है। यह बडा भारी बाधक है। इसे दूर करने के लिये सत्सग और सत्शास्त्रो के अध्ययन से बहुत आश्चर्यजनक लाभ होता है।

मन कैसे स्थिर हो ? तो मन को स्थिर करने के लिये बहुत सरल युक्ति बताता हूँ। आप मन से भगवान का नाम ले, और मन से ही गणना रखे। र म राम राम—ऐसे राम का नाम ले। एक राम, दो राम, तीन राम, चार राम, पाँच राम। न तो एक दो तीन बोले, न अगुलियो पर रखे, न

माला पर रखे । मन मे ही तो नाम ले, और मन मे ही गणना करे । करके देखो । मन लगे बिना यह होगा नही, और होगा तो मन लग ही जायगा ।

एकदम सरल युक्ति है । तो मन से ही तो नाम लो, मन मे ही गिनती करो और फिर तीसरी बार देखो तो उसको लिखा हुआ देखो । "राम" ऐसा सुनहरा चमकता हुआ नाम लिखा हुआ दीखे । ऐसा करने मे मन कही जायगा नही और जायगा तो यह क्रिया होगी नही । इतनी पक्की बात है । कोई भाई करके देख लो । सुगमता से मन लग जायगा । कठिनता पड़ेगी तो यह क्रम छूट जायगा । तो न नाम ले सकोगे, न गणना कर सकोगे, न देख सकोगे । मन की आंखो से देखो, मन के कानो से सुनो, मन की जबान से लो । इससे मन स्थिर हो जायगा ।

करो। मन से ही कोर्तन करो और मन की रागनी से भगवान् का नाम जपो।

पहले राग को मिटाना बहुत आवश्यक है और राग मिटता है सेवा करने से। उत्पन्न और नष्ट होने वाली वस्तुओ के द्वारा किसी तरह से सेवा हो जाय, यह भाव रखना चाहिये। पारमार्थिक मार्ग मे, अविनाशी मे, भगवान की कथा मे अगर राग हो जाय तो प्रेम हो जायगा। भगवान् मे, भगवान् के नाम मे, गुणो मे, लीला मे आसक्ति हो जाय तो बडा लाभ होता है। अपने स्वार्थ और अभिमान का त्याग करके सेवा कर तो भी राग मिट जाता है।

मनुष्य पाप नही करना चाहता, फिर क्यो करता है। ससार से सुख लेने व सग्रह करने की कामना ही इसका कारण है।

× × ×

ससार के लोग आपके प्रति ठीक व्यवहार नही करते और आप ठीक करे तो दुगुना लाभ होगा, यह बडी भारी तपस्या है।

× × ×

भगवान् से प्रेम होगा तो ससार से द्वेष नही होगा। प्रेम मे द्वेष नही होता, राग मे द्वेष होता है। राग, प्रियता और आसक्ति यह अनर्थ का हेतु है।

× × ×

बुराई नही करने का निर्णय लोगे तो बुराई नहीं होगी, होगी तो दीखने लगेगी। उसे छोडते जाओ, एकदम र्मलता आ जायगी।

: श्री हरि :

वा मैं कैसे गे

आप जो सम्बन्ध भगवान् के साथ मान ले, भगवान् भी वही सम्बन्ध मानने को तैयार हैं। आपका भाव सरलता से जिस प्रकार आवे, वही भाव ले लो।

> तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी।
> हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुञ्ज-हारी ॥
> नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो।
> मो समान आरत नहीं, आरतिहर तोसो ॥

ऐसे ही तुलसीदास जी आगे कहते है–

> तोहिं मोहिं नाते अनेक, मानियै जो भावै।
> ज्यो-त्यो तुलसी कृपालु ! चरन-सरन पावै ॥

ऐसे मान लो। भगवान् के प्रति भाव बदल लो। भगवान् ही मान लो। अपने प्यारे मान लो, जो भाव प्यारा लगे उनके साथ वही मान लो। यहाँ कई वर्षों पहले व्याख्यान करते हुए एक भाई ने प्रश्न किया —मुझे तो मा का नाम प्यारा लगता है। प्रत्येक का ही ऐसा भाव होता है कि मा अच्छी लगती है। पालन करने वाली होती है मा। बूढे हो जाय तब तक मा याद आती है। मा का स्नेह होता है। स्नेह का प्रभाव ज्यादा हो जाता है। तो, हम भगवान् को मा कह कर पुकारे। मेरे से पूछा था एक सज्जन ने—भगवान् को हम मा कहे क्या ? (अथवा कह कर पुकार सकते हैं क्या ?)। भगवान् मे स्त्री-पुरुष का बिल्कुल भेद है ही नही। मा कहो। मा रूप मे आ जाये भगवान्। प्रबोध–सुधाकर पुस्तक मे श्री शकराचार्य जी

महाराज (वेदान्त के आचार्य) ने, 'मात कृष्णा विधान' लिखा है। कृष्ण भगवान् को मा कह कर पुकारते है।

मा कह कर पुकारो। मा नाम से यदि स्नेह जागृत हो, मन लगता हो। भगवान् को मा कहो। अपना क्या है? पिता कहो। भाई कहो। जो नाम प्यारा लगे, जो सम्बन्ध प्यारा लगे।

ऐसा नही मान सको तो राधा जी को मा बना लो, आपके वहम हो तो। नही तो कृष्ण है ही ज्यो के त्यो, मा है मेरी।

पहले आरम्भ-आरम्भ मे ही सम्बन्ध जोडने मे मन जाता हे। मैंने कहा न, उद्देश्य एक बनालें। लक्ष्य एक बना ले। बस, फिर बाद मे जगह-जगह मन नही जायेगा, फिर एक मे ही मन रहेगा। जैसे लडका हो या लडकी। आप उनका सम्बन्ध करते हो, लडके का सम्बन्ध करते हो तो अनेक लड-कियो की बाते करो तो छोरा सुनेगा। लडकी का सम्बन्ध आप करते हो, अपनी स्त्री से बातें करते हो, देखो वहा ऐसा लडका है, इतना पढा–लिखा है। इस प्रकार की बाते करोगे-तो लडकी सुनेगी। ऐसी बाते लडकी कब तक सुनती है? जब तक उसका सम्बन्ध पक्का नही हो जाता। आप सम्बन्ध पक्का कर दे, अमुक के साथ बात पक्की हुई। उसके बाद (सम्बन्ध पक्का होने के बाद) छोरी केवल उसकी ही बात सुनेगी। कोई बात करोगे तो सुनेगी। दूसरे की बात इस प्रकार से नही सुनेगी। सुनेगी तो परवाह नही करेगी। ऐसे ही छोरा। यदि किसी के साथ सम्बन्ध पक्का हो गया तो छोरा सम्बन्ध वाली छोरी की ही बात सुनेगा। सुनेगा लडका भी। देखेगा कि कैसी योग्यता है। कैसी बात है। छोरी छिप-छिप कर सुनती है। यह क्या

और वैसी वात न रहे, फिर एक पन्ना पीछे से पढो । फिर पढते पढते भाव आ जावे फिर छोड दो वहा । पुस्तक पढना या पूरा करना है, यह मतलव नही । मन लगाना है । बस, वहाँ लगा दिया । उसके वाद फिर नाम-जप करते रहो । कीर्तन करते रहो । प्रार्थना करते रहो । वाते (प्रभु से) करते रहो । भगवान् की बाते करते रहो मन मे । हमारा मन नही लगता महाराज ! मे क्या करू ? आप कव दर्शन दोगे ? आपके चरणो मे कब प्रेम होगा ? ऐसे एक पुस्तक निकली है गीता-प्रेस से "ध्यानावस्था मे प्रभु से वार्तालाप" उस पुस्तक के अनुसार करो, बडा लाभ होगा । चलते–फिरते भगवान् से वात करना शुरु कर दो । मन से प्रश्न पूछो तो मन से उत्तर मिले । जो स्फुरणा हो जाय–भगवान् ने उत्तर दिया । फिर भगवान् से पूछो-सुगमता से मन लग जायेगा । भक्तो के चरित्र वताये । इसी प्रकार विनय–पत्रिका ले ली अथवा कोई स्तुति ले ली । स्तुति करते-करते, मन लग जाय । चिन्तन करना, नाम-जप करना शुरू कर दो । जब छुट जाय तो फिर पढना शुरु कर दो । इन बातो मे से कोई एक वात अपना कर आप देखे । फिर पूछो—फिर चर्चा करे आप से । ऐसे तो यह युक्ति-सगत जँचती है । बात यह ठीक है । ऐसे हो सकता है कि नही । यदि सम्भव है तो करके देखो । करके देखने से पता लगता है कि कहाँ–कहाँ विघ्न आते है । कहा बाधा आती है ? क्यो बाधा आती है ? इन बातो का पता लगेगा ।

यदि मन अधिक चचल हो तो दो नाम-जप करे, एक तो मुख से करे राम, राम, राम, । दूसरे भीतर से हरे राम, हरे राम । हरे कृष्ण, हरे कृष्ण । षोडश-मन्त्र । ऊपर से राम राम करे, भीतर से हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरे।

हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। जप करता रहे, थोडी-२ देर बाद भगवान् से कहता रहे कि आपके चरणो मे मन नही लगता। हे भगवान् मन नही लगता। नमस्कार करे। कहता रहे। यह बडी युक्ति है, सरल बात है। नाम-जप करता रहे, आधा मिनट हुआ, एक मिनट हुआ। कह दिया महाराज। मन नही लगता। भगवान् से कह दो। कहना-प्रार्थना हो गई। भगवान् की याद आ गई। नाम जप हो रहा है। पाच-सात दफे माला मे कह देवे। भगवान् से कह दे। महाराज, मन नही लगता। हे नाथ! मैं भूल जाता हू। हे नाथ! मन नही लगता हे नाथ! मै भूल जाता हू। हे नाथ! मन नही लगता। नमस्कार करते रहो, कहते रहो। षोडप-मन्त्र ब्रह्मा जी का बताया हुआ है, यह जपता रहे और प्रार्थना करता रहे। हे नाथ! मन नही लगता। हे भगवान् क्या करू? महाराज! आपके चरणो मे मन नही लगता, कहते रहो। उनकी कृपा से लगेगा।

राम-राम-राम-राम-राम।

जो व्यवहार हमें अपने लिए अच्छा नही लगता वह दूसरो के प्रति मत करो। चार बातो पर ध्यान दे-

किसी का कभी बुरा नही करेंगे।
किसी का कभी बुरा नही सोचेंगे।
किसी का कभी बुरा नही सुनेंगे।
किसी का कभी बुरा नही देखेंगे।

यह कर्मयोग की बडी सीधी युक्ति है।

श्री हरि :

निरन्तर भगवत्स्मृति कैसे हो ?

श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् ने कहा है—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्ध च । (गीता ८/७)

इसलिये सब समय मे तू निरन्तर मेरा ही स्मरण कर और युद्ध (कर्त्तव्य कर्म) भी कर । भगवान् का स्मरण सब समय मे हो सकता है, किन्तु युद्ध सभी समय मे नही हो सकता, अर्जुन के सम्मुख युद्ध-रूपी कर्त्तव्य ही था । अन्य लोगो के सामने अपने-अपने घरो के काम है । युद्ध की तरह घरो के काम-धन्धे भी सभी समय मे नहीं हो सकते । इस प्रकार भगवान् का स्मरण करते हुए काम करना, काम करते हुए भगवान् का स्मरण करना एवम् भगवान् का ही काम करना । ये तीन विकल्प साधक के सम्मुख उपस्थित होते है । पहले विकल्प मे भगवत्स्मरण ही प्रमुख है । कार्य गौण है । दूसरे विकल्प मे कार्य ही प्रमुख है और भगवत्स्मरण गौण है । और तीसरे विकल्प मे भगवान् के प्रति अनन्य भाव है ।

प्राय लोग काम करते हुए भगवान् को भूल जाते हैं । इसमे स्वय की असावधानी एक प्रमुख कारण है ही, परन्तु साथ मैं एक भारी भूल भी है । यह एक सिद्धान्त है कि जिसके प्रति ममता होती है, उसका स्वत ही स्मरण होता है । लोग काम-धन्धो को अपना मानते है, उनके प्रति ममता रखते है, अत. उन्हे काम-धन्धे ही याद आते हैं, भगवान्

नही। भगवान् याद आते भी हैं, तो कुछ समय पश्चात् उन्हें पुन भूल जाते है। अत यह दृढ निश्चय कर लेना चाहिये कि हमे घर का काम करना ही नही है। काम तो भगवान् का ही करना है। "अजन कहा आँख जेहि फूटे" जिस अजन से आँख फूट जाय, वह अजन कैसा? उससे हमे क्या मतलब? घर का काम करते हुए भगवान् को भूल जाये तो ऐसे काम से क्या लेना? अत साधक को यह मान लेना चाहिये कि घर हमारा नही, काम हमारा नही एवम् हम भी हमारे नही। घर भी भगवान् का, काम भी भगवान् का एव हम भी भगवान् के हैं। भगवान् की शक्ति से ही भगवान् की प्रसन्नता के लिये हम भगवान् का ही काम कर रहे है— इस प्रकार की दृढ भावना से भगवान् के प्रति ममत्व पैदा हो जाएगा और फिर भगवान् का स्मरण स्वत ही होने लगेगा। स्मरण के लिये प्रयास की कोई आवश्यकता नही रहेगी। किन्तु जब तक घर आदि को अपना मानते रहेगे, तब तक स्मरण मे भूल होगी ही।

जैसे हम किसी धर्मशाला मे ठहरते है तो यह बात जँच जाती है कि यह धर्मशाला हमारी नही है। इसी प्रकार घर मे रहते हुए यह बात जँच जानी चाहिए कि यह घर हमारा नही है, यहाँ तो थोडे समय के लिये हम रहने आये है। इस बात को बहुत ही दृढतापूर्वक पकड लेना चाहिये कि यह घर मेरा नही, धनादि पदार्थ मेरे नही, परिवार मेरा नही, शरीर मेरा नही। ये तो थोडे समय के लिये मिले हुए है। समय पूरा होते ही इनसे वियोग हो जायेगा। यदि ये मेरे होते तो सदा मेरे साथ रहते, किन्तु इन पर न तो कोई अधिकार ही चलता है, न इनमे हम इच्छानुसार परिवर्तन ही कर सकते है और न इनको मरने, नष्ट होने मे बचा ही

सकते है। अत ये पदार्थ आदि मेरे कैसे हो गये ? किसी भी युक्ति-प्रयुक्ति से इनके साथ "मेरापन" सिद्ध नही होता। अत. यह मेरे नही है, नही है, नही है।

मेरे तो एकमात्र भगवान् ही है, क्योकि भगवान् पहले भी मेरे थे, अब भी हैं एव आगे भी रहेगे। सासारिक पदार्थ पहले भी मेरे नही थे, आगे रहेगे नहीं एव वर्तमान मे भी इनसे निरन्तर ही वियोग हो रहा है। ससार के साथ कभी सयोग है ही नही और भगवान् के साथ कभी वियोग है ही नही।

भगवत्प्राप्ति की इच्छा कभी भी मिटती नही। मनुष्य चाहे इस बात को माने या न जाने, किन्तु उसके हृदय मे यह कामना अवश्य रहती है कि मैं सदा के लिए पूर्ण सुखी हो जाऊ, सभी बन्धनो से मुक्त हो जाऊ, मेरे पास कभी दुख न आये। यही भगवत्प्राप्ति की इच्छा है। यह इच्छा अवश्य-मेव पूरी होती है, क्योकि यह जीव की वास्तविक एव सच्ची इच्छा है।

ससार की इच्छा बिल्कुल नकली है। यह इच्छा बनती और मिटती रहती है, किन्तु कभी पूरी नही होती। लोगो ने मिथ्या धारणा कर रखी है कि ससार की इच्छा मिटती नही। परन्तु वास्तविक बात यह है यह इच्छा टिकती नही, बदलती रहती है। बचपन मे कोई और इच्छा थी, जव.नी मे कोई और हो जाती है एव वृद्धावस्था मे तो इच्छा का रूप ही बदल जाता है। ससार स्वय परिवर्तनशील है। अत ससार की इच्छा भी परिवर्तनशील ही है। शरीर भी परिवतनशील ही है। अत ससार की इच्छा शरीर की ही इच्छा है, व्यक्ति की स्वय की इच्छा नही है। स्वय (जीव) अपरिवर्तनशील है,

परमात्मा भी अपरिवर्तनशील है एवम् परमात्मा की इच्छा भी अपरिवर्तनशील है। इसलिये परमात्म-प्राप्ति की इच्छा ही जीव की स्वय की इच्छा है। सासारिक पदाथ शरीर को ही प्राप्त हो सकते है। स्वय (जीव) को नही। स्वय (जीव) को तो परमात्मा ही प्राप्त हो सकते है, क्योकि ससार, सासारिक पदार्थ एव शरीर की जातीय एकता है। इसी प्रकार परमात्मा एव जीव की जातीय एकता है, सम्बन्ध सजातीय का ही होता है, विजातीय का नही। ससार के अश को ससार की इच्छा है एव परमात्मा के अश को परमात्मा की इच्छा है।

ससार का काम, घर-परिवार का काम भी, शरीर, मन, इन्द्रियाँ आदि का ही काम है, हमारा काम नही है। हमारा काम तो भगवान् का भजन करना एव भगवान् और उनके तत्त्व को प्राप्त करने का ही है। हमे एकमात्र भगवान् की ही आवश्यकता है एव भगवत्प्राप्ति की इच्छा ही हमारी वास्तविक इच्छा है। ससार का काम तो पराया काम है।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध होता कि जीव का परमात्मा के साथ ही स्वत सिद्ध नित्य सम्वन्ध है। परन्तु अज्ञानवश ससार को एव ससार के काम को अपना मान लेने के कारण ही जीव कार्य करते समय भगवान् को भूल जाता है। जीव यदि दृढता पूर्वक भगवान् के साथ अपने नित्य, सत्य शाश्वत सम्वन्ध को स्वीकार कर केवल उन्हे अपना मान ले एवम् भगवत्प्राप्ति के अतिरिक्त किसी भी कार्य को अपना कार्य न माने तो वह भगवान् को कभी भूल ही नही सकता। ससार की इच्छा करने एव ससार के साथ सम्वन्ध मानने के कारण ही भगवत्प्राप्ति मे भूल होती है। अत अपने वास्तविक सम्वन्ध एव कार्य को पहिचानना चाहिए।

प्रश्न निरन्तर भगवत् स्मरण के लिए नाम जप की आवश्यकता है क्या ?

उत्तर कलियुग मे नाम सर्वोपरि साधन है। नाम जप से सब काम स्वत ही ठीक बन जाते हैं। "नामु राम को कलपतरु कलि कल्यान निवासु ।।" (मानस १/२६) रामजी का नाम रूपी कल्पतरु कलियुग मे बहुत कल्याण करता है। इस कल्पतरु से जो चाहे सो ले लो। निरन्तर नाम जप करने से इसमे रस आने लगता है। मिठाई खाने वाला ही रस को जानता है। ऐसे ही नाम को लेने वाला ही नाम के रस को जान सकता है।

नाम जप से अत्यधिक लाभ होता है। नाम जप से विषय-वासना दूर होती है, पाप नष्ट होते है, विकार दूर होते है, शान्ति मिलती है, और भक्ति बढती है। नाम जप से असम्भव भी सम्भव हो सकता है। जब मन मे चिन्ता आवे तो आधा घटा, एक घटा नाम जपो, चिन्ता मिट जायगी। नाम जप करने वाले सज्जन नाम मय हो जाते है।

नाम जप तो असली धन है जो साथ जाता है। इसलिये कहा है। "धनवन्ता सोई जानिये जाके राम नाम धन होय।" नाम की कीमत कोई आँक नही सकता। यह अमूल्य रत्न है। "पायो री मैंने राम रतन धन पायो।" नाम को सगुण और निर्गुण से भी बड़ा बताया है।

"कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई ।।" (मानस १/२५/४) नाम के गुण तो स्वय भगवान् भी गाना चाहे तो नही गा सकते। नाम की महिमा अपार है, असीम है और अनन्त है।

प्रश्न नाम जप की खास विधि क्या है ?

उत्तर भगवान् के स्वरूप का ध्यान करते हुए, अर्थ को समझते हुए, भगवान् के होकर नाम का जप करे। नाम जप गुप्त रूप से और निष्काम भाव से करे। नाम जप निरन्तर करते रहे। नाम को भूल न जाये, इसके लिए एक उपाय है। मन ही मन भगवान को प्रणाम करके उनसे प्रार्थना करे "हे नाथ ! मैं आपको भूलूँ नही, हे प्रभो ! आपको मैं भूलूँ नही। ऐसा थोडी थोडी देर मे कहते रहे।

एक बात और है, उस पर ध्यान दे। जब कभी आपको भगवान् अचानक याद आ जायें, या भगवान् का नाम अचानक याद आ जाय उस समय समझो कि भगवान् मेरे को याद करते हैं। ऐसा समझ कर प्रसन्न हो जाओ कि मैं निहाल हो गया, मेरे को भगवान् ने याद कर लिया। अब और काम पीछे करेंगे—उस समय नाम जप व कीर्तन मे लग जाओ। ऐसा करने से भक्ति बहुत ज्यादा बढती है।

माला से जप करना लाभदायक है। भगवान् को याद करने के लिये माला एक शस्त्र है। माला फेरनी चाहिये। जितना नियम है उतना जप माला से पूरा हो जाता है। उसमे कमी न आ जाय इसलिये माला की आवश्यकता है। बिना माला के अगर निरन्तर जप होता है तो माला की कोई जरूरत नही है।

दूसरे लोग उठायेंगे । यह पहले से विचार करना होगा, सोचना होगा कि क्या करना चाहिए । जैसे कोई मनुष्य घर से निकल जाता है और पता ही नही कि कहा जाना है तो क्या दशा होती है ? पूछे किसी से कि मार्ग बतादो, तो बताने वाला पूछे कि कहा का ? तो कहे कि कही का वता दो । तो वो पागल समझा जायगा । एक लक्ष्य तो होना चाहिए । भाइयो ध्यान देना । हमारी जीवन-यात्रा तो हमारे जन्म के समय से ही चल पडी । जीवन प्रतिक्षण खत्म हो रहा है और हमे इस जीवन मे क्या करना है, यह पता नही । हममे से वहुत से वहिन-भाइयो को तो पता ही नही कि हमे किधर जाना है, हमारे जीवन का क्या लक्ष्य है । मैंने पूछ कर देखा है कि वताओ हम क्या चाहते है ? तो उनके पास कोई निर्णय नही है । कभी कुछ चाहते हैं, कभी कुछ चाहते है । यहाँ की सब चीजे तो छूटने वाली है, तो प्रभु को याद करो जो नित्य निरन्तर रहने वाले है ।

सज्जनो चेतो । दूसरो को धोखा दे दे, हम कुछ ले ले, महान् मुश्किल होगी, कुछ नही मिलेगा । सव कुछ यही रहेगा और यमराज के दूत आ जायेंगे । वह दिन कभी भी आ सकता है, पता नही कव आ जाय । उसके आने मे कोई सन्देह नही है । आप हम सव कहा वैठे है, पता है ? मृत्यु लोक मे हैं, मरने वालो के लोक मे है, यहाँ रहने वाला कोई नही सब मरने ही मरने वाले है । निश्चिन्त कैसे वैठे हो ? जो काम करना है सो कर लो अव नही किया तो फिर कव करोगे ? छोटे-२ वालक होते है, वे भी यह सोचते हैं कि वडे होकर यह करेंगे । इसी प्रकार हम सोचते हैं कि वडे होकर यह करेंगे । वाल सफेद होने लगे तो क्या करोगे ? अव तो मरोगे, वस । शरीर प्रतिक्षण जा रहा है, इसमें सन्देह नही

है किंचितमात्र भी । जन्म-दिन पर खुशी मनाते हैं, अरे रोने का दिन है कि एक वर्ष बीत गया परन्तु इसमे किया क्या ? १२ महीने की उम्र को जिसमे भगवान् की प्राप्ति हो सकती थी, व्यर्थ गवा दिया । विचार करने की बात है । अगाडी सावधान होने की बात है कि अब जो समय बीत गया, वह तो बीत गया, अब नही बीतने देगे । उस प्रभु को याद करो ।

"अतहु तोहि तजेंगे पामर, तू न तजै अब ही ते" ।

ये तो सब छूटने वाले है परन्तु काम पडने पर परमात्मा ही साथ रहने वाले है । वे प्रभु ही हमारे है, सज्जनो, और कोई हमारा नही हे । अन ,'हे नाथ, हे नाथ" । पुकारो । वे प्रभु प्रत्येक समय मे है, तो अभी भी है, प्रत्येक स्थान पर है तो यहाँ भी है और सबके है तो हमारे भी है, सबमे हैं तो हमारे मे भी है, वे स्वय कहते है—"सुहृद सर्वभूतानां" प्राणीमात्र के सुहृद—ऐसे परमात्मा के रहते हुए हमारी दुर्दशा हो तो फिर क्या कहे ? उसके रहते हुए हम दु ख पावें, कष्ट उठावें । तो कारण क्या है ? उसके विमुख होना । नाशवान् पदार्थों के पीछे पडना कि वे मिल जाये, भोग भोग ले, मान, सम्मान मिल जाय, मिलेगा कुछ नही, धोखा होगा धोखा । सब ज्यो का त्यो रह जायेगा, साथ कुछ नही जावेगा । अत उपकार करो । साथ क्या चलेगा ? साथ चलेगा—स्वभाव । सेवा करने वाला सब जगह सेवा करेगा और महान् आनन्द लूट लेगा । असली जी आपकी है, आपका स्वभाव । एक दिन के लिए भी कही जाते है तो सोचते है कि अमुक जगह ठहरना होगा, अमुक सवारी मिलेगी । परन्तु इस ससार को एक दिन छोडना है, इसे छोड कर जाना पडेगा जरूर, तो इसका प्रबन्ध किया है कि नही, यह प्रत्येक भाई बहिन को स्वय को

सोचना होगा। एक क्षण का भी पता नहीं, हार्टफेल हो ...
है तो चलते फिरते मर जाता है। फिर हम क्यों फौलाद के
बने हुए हैं। इस वास्ते स्वभाव को शुद्ध बनाओ। हर एक
का उपकार करो, हित करो। प्रभु को याद करो। जितने
सन्त महात्मा हुए है वे सब भगवान् को याद करने से ही सत
महात्मा बने है। भगवान् के नाम विना सब खाली है, खाली।
अत प्रत्येक समय, काम-धन्धा करते हुए भी, न करते हुए
भी भगवान् को पुकारते रहो। उठते, बैठते, सोते-जागते,
उससे काम पडने वाला है, उसको याद करते रहो। प्रत्येक
समय नाम-जप करते रहो कहते रहो—राम राम राम राम
राम।

नाम जप करो। अन्त मे नाम काम आवेगा। धन,
सम्पत्ति, परिवार, मकान कुछ काम नही आवेगे। अभी तक
जिन कामो को करते हुए, आपको सत्संग, भजन, ध्यान,
स्वाध्याय, पाठ जप आदि के लिए समय नही मिलना हे अन्त
मे क्या होगा ? हाय! हमने कुछ नही किया। यह सारा
काम-धन्धा कुछ नही किया मे भर्ती होने वाला है। मनुष्य
कहता है कि सत्सग के लिये समय नही मिलता। राम-राम
कितनी भारी भूल। बच्चा जन्मता है, तो बडा होगा कि नही
होगा, इसमे सन्देह है, पढेगा, नही पढेगा इसमे सन्देह है,
विवाह होगा, नही होगा, इसमे सन्देह है, परन्तु मरेगा, नही
मरेगा, इसमे सन्देह नही है। मरना तो पडेगा ही। परन्तु
जिन कामो मे सन्देह है उन्हे तो तत्परता से कर रहा है,
परन्तु जिस काम मे सन्देह नही, जाना तो पडेगा जरूर, उसके
लिये कोई तैयारी ही नही। बडे आश्चर्य की बात है। यह तो
हम गकते नही। यह बडी भारी भूल है। अत सावधान
हो जाओ।

मैं एक सच्ची बात कहता हूँ । वह है कि सिवाय भगवान् के अपना कोई नही है । मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, श्वास आदि कोई आपके नही । परन्तु प्रभु को आप अपना मान ले तो प्रभु छोड नही सकते आपको । यह सब चीजे, जिनके आप पीछे पडे है, आपकी कोई नही मानने वाले है । जिस शरीर की आप सदा रक्षा करते हो, एक दिन रात्रि मे भूल से कपडा अलग रह जाय तो जाडा लग जायेगा । यह ख्याल नही करता कि कितने दिन इसने रक्षा की, एक दिन मैं भी क्षमा कर दूँ, इतने वर्षो से अन्न जल दिया । दो दिन अन्न जल बन्द कर दो । क्या दशा होती है ? यह इतना कृतघ्न है कि दो दिन मे ही पोल निकाल देता है । तो ऐसे कृतघ्न शरीर के तो बन गये गुलाम । और जो भगवान् याद करने मात्र से दौडते हैं उन भगवान् को याद ही नही करते । विना याद किये भी उन भगवान् ने हमे विद्या, बुद्धि, ज्ञान, शरीर, जीवन आदि सभी दिये हैं और देते ही रहते हैं और इतने ढग से देते हैं कि उनका दिया हुआ, अपना ही मालूम देता है । ऐसे परम सुहृद परमात्मा को भूल गये ।

"सुहृद सर्वभूताना ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति" ।

(गीता ५।२९ (उत्तरार्द्ध))

परमात्मा पापी, दुराचारी, सज्जन आदि सभी के परम सुहृद है अत उसको तो याद करो और ससार का काम करो । और ससार के काम से भी भगवान् को राजी करो । कैसे ? स्वार्थ का त्याग करके सेवा करो । सब भाई-बन्धुओ की, स्त्री, पुत्र की, सबकी सेवा करो, सबको सुख पहुँचाओ, भगवान् के नाते, यह सोचकर कि यह सब भगवान् के हैं । तो इससे भगवान् बडे राजी होगे कि यह मेरे बच्चो का पालन करने

वाला है। जैसे कोई एक वच्चा है जिसके माता-पिता नही, उमे एक माई घर ले जाती है और उसका पालन-पोषण करती है, तो लोग कहते है कि वडी दयालु माई है। अपने वच्चो का पालन तो सभी करते हैं, कुतिया भी अपने वच्चो का पालन करती है। अत सवका हित करना है। चाहे तो जिनसे अपना कोई स्वार्थ न हो उनका हित करदो या जिनकी अपन सेवा करते है, उनसे अपना कोई सम्वन्ध न रखो। एक ही वात होगी। अत स्वार्थ त्याग कर सवको सुख पहुँचाओ, सवका हित करो—

> सर्वे भवन्तु सुखिन· सर्वे सन्तु निरामया ।
> सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दु खभाग्भवेत् ।।

किसी को दु ख न मिले, सवको आराम मिले, सवको सुख मिले। सज्जनो! ऐसा भाव करलो। यह मनुष्य जन्म का खास मौका है। स्वार्थ के लिए करना मनुष्यता नही है। कुत्ते आपस मे खूव खेलते है परन्तु रोटी का टुकडा देखते ही लडाई हो जाती है। ऐसे ही यदि स्वार्थ के लिए हम लोग भी लडे तो हममे क्या अन्तर हुआ? तो यह भाव रखो कि सवका हित कैसे हो? "ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्व-भूतहिते रता"। (गीता १२/४ उत्तरार्द्ध)। सवके हित मे जो रत होते हैं वे परमात्मा को प्राप्त होते हैं। अत सज्जनो ससार को अपना मानकर जो लाभ आपने उठाया है, वह तो उठा ही लिया, अव भगवान् को अपना मानकर देख लो। सवका हित हो, सवको आराम मिले, सवका कल्याण हो यह भाव रखो। सेवा जितनी कर सको, उतनी करो। परन्तु भाव मे कमी न रखो। भाव भीतर का यह होना चाहिए कि सवके हित मे प्रीति हो तो उस भाव से स्वत त्याग होगा। भावना

पहले होती है, क्रिया बाद मे होती है। अत सबके हित की भावना हो। जो भी बडे-बडे महात्मा हो गये, उनमे दूसरो के हित की भावना थी।

"उमा सत कइ इहइ बड़ाई। मद करत जो करइ भलाई" ॥
(मानस ५/४०/४)

उनके साथ कोई मन्द करे तो भी वे तो भलाई करते ही रहते हैं। ऐसे ही सबका भला हो जाय, सबका कल्याण हो जाय, वह चिन्तन आपके मन मे लग जाय, तो आपका उद्धार हो जायेगा। महापुरुषो के सग से, दर्शन से कल्याण हो जाता है। तो इसका कारण क्या है? कारण है कि एकान्त मे रहते हुए भी उन महापुरुषो के चिन्ता रहती है कि सबका कल्याण कैसे हो जाय। उस लगन के कारण उनके दर्शन मात्र से ससार का हित होता है। उनकी हवा मात्र से सबका कल्याण होता है।

एक और मार्मिक बात है कि जैसे परमात्मा सबका हित चाहते है उसी प्रकार जो व्यक्ति सबका हित चाहता है उसकी परमात्मा की शक्ति के साथ एकता हो जाती है और उसके द्वारा सबका हित होता है।

अत सज्जनो, भाइयो, बहिनो सच्चे हृदय से सबका हित कैसे हो, सबका कल्याण कैसे हो, यह लगन लग जाय। माता-बहने घरो मे स्वय कार्य करे और सेवा करे, दूसरो से करायें नही। यह शरीर थोडे दिनो के लिये मिला है, फिर समाप्त होने वाला है। अत थोडे दिन डट कर सेवा कर लो। लाभ उठा लो। फिर यदि बीमार हो जायेगा तो दूसरे आदमी की इसे जरूरत पडेगी, इसे उठाने बैठाने के लिए भी। जिए तो यह दशा हो जावेगी, अन्यथा खत्म हो जाओगे। यह सेवा

असली चीज है, असली, यह भगवान् को भी खरीदने वाली है। इसलिए सेवा करो, चीज वस्तु तो दूसरो को दो और काम धन्धा अपने आप करो। देखो आपस मे प्रेम होता है कि नही। परिवार मे झगडा क्यो होता है? इसलिए कि हम कहते है कि काम-धन्धा तो तू कर और चीज मैं लू। तो लडाई होगी। आपस मे प्रेम बढाने का दूसरा उपाय है कि बडो के चरणो मे प्रणाम करे। इससे आवागमन मिट जाता है। बडो के चरणो मे नमस्कार करो। उनकी आज्ञा का पालन करो। उनकी सेवा करो। कितनी प्रसन्नता हो जायेगी। आपस मे प्रेम बढेगा। स्नेह बढेगा। घर मे आनन्द रहेगा। धर्म, सन्त, महात्मा, परिवार भगवान् सभी राजी हो जायेगे। परन्तु यदि कोई गडबडी करता है, खोटे रास्ते पर चलता है तो माता-पिता भी नाराज हो जायेंगे। अत सेवा, उपकार करो और भगवान् को याद रखो। यह ससार सदा रहने का नही है, यहाँ सदा रहने के लिए नही आये है, थोडे दिन रहना है। जैसे कुछ दिनो के लिए सत्सग मे आये है, गीता भवन मे, फिर यहाँ से चल देगे, इसी प्रकार इस ससार से चल देना है अचानक, और पता है नही कि कब चल देना है। अत सज्जनो समझदार वही है।

तुलसी सो नर चतुर है जो राम भजन लवलीन।
पर धन, पर मन हरण को वेश्या भी परवीण॥

भगवान् के भजन मे जो लग गया है वह धन्य है। भगवान् के दरबार मे भी उसका आदर है कि उसने मनुष्य जन्म सफल कर लिया। भगवान् ने कृपा करके मनुष्य जन्म दिया कि जिसमे यह अपना कल्याण कर ले। परन्तु यदि मनुष्य अपना कल्याण नही करते तो वे भगवान् को एक प्रकार से

धोखा देते है। इस वास्ते ऐसा न हो जाय। हमे मनुष्य शरीर मिला, उत्तम कुल मिला, भगवान् की ओर चलने की रुचि मिली, सत्सग मिला, गीता, रामायरण जैसे ग्रन्थ और भगवान् का नाम सुनने को मिला। अब क्या बाकी रहा ? थोडा सा उद्योग अपनी तरफ से करो। हा मे हा मिलाओ। इतने मे कल्याण होता है। भगवान् की कृपा मान करके नाम का जाप करो सेवा करो और रात दिन मस्त रहो कि हम तो अन्याय करते ही नही, किसी को दु ख देते ही नहीं, किसी को कष्ट पहुचाते ही नही, तो फिर हमे दु ख किस बात का, चिन्ता किस बात की।

तन कर, मन कर, वचन कर, देत न काहू दु ख।
तुलसी पातक झड़त है, देखत उसके मुख।।

अत आप कृपा करो कि अब से किसी को दुख नही दगे। मन से भी किसी का बुरा चिन्तन नही करगे। जिह्वा से ऐसी वाणी बोलेंगे जिससे किसी को कष्ट न पहुचे। कोई क्रिया ऐसी न करे जिससे किसी को कष्ट पहुँचे। सबको आराम पहुँचाए, सेवा करे। ऐसे सम्पूर्ण प्राणियो के हित मात्र मे आप लगे रहो, तो भगवान् की अनन्त शक्ति, अपार शक्ति आपके साथ है। तो ऐसा करते ही मनुष्य जीवन सफल हो जाय। कलियुग की श्रेष्ठ पुरुषो ने बडी महिमा गाई है क्योकि इसमे कल्याण शीघ्र होता है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास।।

(मानस ७/१०३)

विना प्रयास के ही इस ससार-सागर से तर जाता है। ऐसा सुन्दर मौका हमे मिला है। अत हम भगवान् के चरणो मे

लग जाये । अपने भगवान् हैं भगवान् के अलावा कोई हमारा नही, हम किसी के नही है । ससार मे आये है तो केवल सेवा करने के लिए आये है । ससार से स्वार्थ मिलेगा ? सब सोचते हैं कि मैं अपना स्वार्थ सिद्ध कर लूँ, तो इससे स्वार्थ सिद्ध होगा नही । दूसरो की सेवा करो और जो प्रभु अपने है, उनको याद रखो । यह जीवन सेवा करने के लिए मिला है । अत न्याययुक्त, शास्त्र की पद्धति के अनुसार सबकी सेवा करो ।

उद्योग पर्व मे कथा आती है धृतराष्ट्र विदुर जी को बुलाते है और पूछते है कि मेरे को नीद नही आ रही है । तो विदुर जी ने कहा कि जो सच्चे आदमियो से वैर करेगा और उनको कष्ट देना चाहेगा, उसे नीद नही आयेगी । उसे अशान्ति रहेगी ही । पाण्डवो के साथ खराब व्यवहार करके शान्ति चाहते हो ? जिसका हृदय खराब होगा, उसे शाति नही मिलेगी । स्वार्थ सिद्ध करके जो यह सोचता है कि म अपना काम बना लू तो वह काम बना नही रहा है, बिगाड रहा है । इस वास्ते यह जो स्वार्थ दीखता है, महान पतन की बात है । अत इस थोडे मे जीवन मे जो सेवा अपने से बन सके,

नही है । यहाँ से जाना पडेगा–पडेगा । राजा, महाराजा, सेठ, धनी, गरीब, भाई, बहिन, पण्डित, मूर्ख, कोई भी हो, सबको यहाँ से जाना पडेगा ।

कैसे निश्चिन्त होकर बैठे हो ? किसके भरोसे निर्भय बैठे हो ? भगवान् को याद करो । जो भगवान् के नाम का जप मन लगा कर कर रहा है वह मर जाये तो आनन्द, और जी जाये तो आनन्द । मरे तो भगवान् का स्मरण करते हुए मरे और जीवे तो भजन का सग्रह हो जावेगा, तो हम तो मालामाल हो गये । भजन है यह साथ मे जाने वाला धन है । चोर इसे नही ले जा सकते, राजा इसे नही ले सकता । भाई-भाई के बँटवारे मे यह नही जा सकता, यह सदा साथ रहने वाली सच्ची पूँजी है । ऐसी बढिया पूँजी है कि इससे भगवान् को खरीद लो ।

नही है । यहाँ से जाना पडेगा–पडेगा । राजा, महाराजा, सेठ, धनी, गरीब, भाई, बहिन, पण्डित, मूर्ख, कोई भी हो, सबको यहाँ से जाना पडेगा ।

कैसे निश्चिन्त होकर बैठे हो ? किसके भरोसे निर्भय बैठे हो ? भगवान् को याद करो । जो भगवान् के नाम का जप मन लगा कर कर रहा है वह मर जाये तो आनन्द, और जी जाये तो आनन्द । मरे तो भगवान् का स्मरण करते हुए मरे और जीवे तो भजन का सग्रह हो जावेगा, तो हम तो मालामाल हो गये । भजन है यह साथ मे जाने वाला धन है । चोर इसे नही ले जा सकते, राजा इसे नही ले सकता । भाई-भाई के बँटवारे मे यह नही जा सकता, यह सदा साथ रहने वाली सच्ची पूँजी है । ऐसी बढिया पूँजी है कि इससे भगवान् को खरीद लो ।

एक कहानी है कि एक देश मे राजा बनाया जाता था । तीन वर्ष वह राजा रहता था, सब काम उसके हुक्म से होता था । तीन वर्ष पूरा होने पर उसको नौका मे बैठाते । विशेष-२ व्यक्ति नौका को पहुँचाने जाते और उसको भयानक जगल मे छोड देते जहा उसको जगली जानवर खा जाते । जब तक वह राजा रहता, तब तक तो प्रसन्न रहता परन्तु जिस दिन उसको विदाई देते, उस दिन रोता जाता । एक बार एक चतुर व्यक्ति के हाथ मे राज्य आ गया । तो उसने खूब कार्य किये, दूसरी ओर सडके बनवाई, कुए बनवाये, मकान बनवाये, सब सुख सुविधाए कर दी । तो तीन वर्ष बाद मे लोगो ने कहा कि चलो । तो बोला चलो । वह खूब मस्त हो रहा था । तो लोगो ने सोचा कि यह इतना मस्त क्यो हो रहा है । उससे पूछा कि तुम हँस क्यो रहे हो ? तो वह बोला कि मैं तो हँसूगा, रोवोगे तुम । मैंने सब माल उस

श्री हरि :

परिवार में व्यवहार

अपने स्वार्थ व अभिमान का त्याग करके "सब का हित कैसे हो" इस भावना से बर्ताव करें। परिवार मे रहने की यह विद्या है। प्रत्येक काम को करने का एक तरीका होता है, एक विद्या होती है, एक रीति होती है और उसमें शिल्पकारीपना होता है, उसमे एक कारीगरी होती है। इसी प्रकार परिवार मे रहने की भी एक विद्या है। आप बेटा हो तो माँ-बाप के सामने सपूत-से-सपूत बेटा बन जाओ। जिसके भाई हो तो उनके लिए आप श्रेष्ठ से श्रेष्ठ भाई बन जाओ। जिसके आप पति हो, उसके लिए आप श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पति बन जाओ। आप पिता हो तो पुत्र-पुत्री के लिये श्रेष्ठ से श्रेष्ठ पिता बन जाओ। आपको जैसा जिसके साथ सम्बन्ध है, उसमे श्रेष्ठ सम्बन्ध आपका होना चाहिये। उनके साथ उत्तम से उत्तम बर्ताव करो तो और लोग भी अच्छा बर्ताव करेंगे। तब परिवार ठीक रहेगा। आप कह सकते है कि परिवार के सब लोग इस तरह सोचेंगे, तब ठीक होगा, एक आदमी क्या करेगा? बात ठीक है, परन्तु आप अच्छा बर्ताव करना शुरू कर दो। उस अच्छे बर्ताव के करने से परिवार का बर्ताव भी अच्छा होगा, और परिवार मे बड़ी शान्ति होगी।

आप अपनी तरफ से ठीक बर्ताव करते रहो। उसमे एक और शूरवीरता ले आओ। रामायण मे आया है—

"उमा सत कइ इहइ बड़ाई। मद करत जो करइ भलाई।। (५/४०/४) परिवार वाले आपके साथ खराब काम करे, आपको दु ख पहुँचावे, आपका अपयश करे, तिरस्कार करे अपमान करे तो भी आप उनका नुकसान मत करो। उनको दु ख मत दो। उनको सुख दो, उनका आदर करो, उनकी प्रशसा करो। उनको कैसे आराम पहुचे—इस भाव से आप वर्ताव करो। आपका परिवार आपके लिये दु खदायी नही होगा। परिवार भी आपस मे ठीक काम करेगा। इस जमाने मे इसकी वडी भारी आवश्यकता है।

गीता मे कहा है "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"
(गीता २/४७)

अपनी ओर मे आप परिवार वालो के साथ कर्त्तव्य कर्म करो। दो चीजे है। एक होता है कर्तव्य, और एक होता है अधिकार। मनुष्य अधिकार तो जमाता है, कर्तव्य नही करता। यह खास बीमारी है, जिसके कारण ससार मे और परिवार मे खटपट मचती है। वह अपना अधिकार रखना चाहता है, और कर्तव्य पालन करने मे ढिलाई करता है, उपेक्षा करता है या कर्तव्य नही करता है। इसी से गडबडी होती है। इस वास्ते अधिकार तो जमाओ मत और कर्तव्य मे कमी किन्चित-मात्र भी लाओ मत। उनके अधिकार की पूरी रक्षा करो। उनका जो हमारे पर हक लगता है, उस हक को ठीक निभाओ। आप उस पर अधिकार मत जमाओ कि हमारा लडका है, हमारा कहना क्यो नही मानता? हमारी स्त्री कहना क्यो नही मानती? भीतर मे यह अभिमान मत रखो। कहना है तो कह दो-प्रेम से, स्नेह से,

आदर से, अपनेपन से, पर भीतर से मत लगाओ कि स्त्री पुत्र मेरे कहने मे ही चले।

परिवार जितना आपके कहने मे चलेगा, उतना ही आपको अधिक बन्धन होगा। जितना ही वह आपका कहना नही करेगा, उतनी आपकी मुक्ति होगी, उतना ही छुटकारा होगा, उतनी ही आप मे स्वतन्त्रता होगी, उतना ही आपको लाभ है। जितना वे कहना अधिक करेंगे, उतना ही आपको बन्धन होगा। मनुष्य को यह अच्छा लगता है कि दूसरे लोग मेरे अनुकूल चले, मेरा कहना माने। परन्तु यह बन्धन कारक है। जहर चाहे मीठा ही हो, पर मारने वाला होता है। इसी प्रकार अनुकूलता आपको भले ही अच्छी लगे, पर वह बाधने वाली है। वे उच्छृखलता करे तो भी आप अच्छा ही अच्छा बर्ताव करो। वे चाहे उम्रभर बुरा ही करें तो भी आप उकताओ मत। आपके लिये बहुत ही बढिया मौका है। आप अपनी तरफ से अच्छा करो। उनके बुरा करने पर भी आप अपना बर्ताव अच्छे से अच्छा करो।

एक सज्जन थे। उन्होने कहा कि आप कुछ भी करो मेरे को गुस्सा नही आता। आप परीक्षा करके देख लो। दूसरे ने कहा कि आपको गुस्सा नही आता बहुत अच्छी बात है। तुमको क्रोध दिलाने के लिये मुझे कुछ न कुछ गडबडी करनी पडेगी। तो मैं अपना स्वभाव क्यो बिगाडूँ ? तो सदैव यह भाव रहे कि हम अपना स्वभाव अच्छा रखें।

"स्वे स्वे कर्मण्यभिरत ससिद्धि लभते नर।" (१८/४५)

अपने कर्तव्य का ठीक तरह से पालन करो। उसका नतीजा अपने लिये भी ठीक ही होगा। परिवार के साथ

न्यायकारी भी है। इन दोनो मे वाधा नही लगती, क्योंकि भगवान के कानून ही ऐसे वनाये हुए हैं कि उन कानूनो मे दया भरी हुई है। जैसे भगवान ने कहा अन्तकाल मे मनुष्य जिसका स्मरण करता है, उसी के अनुसार गति होती है।

य य वापि स्मरन्भाव त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
त तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित ।। गीता ८/६

यह कानून है कि जिस जिस भाव का स्मरण करता हुआ मनुष्य जाता है, वह आगे उसी भाव से भावित होता हुआ उसी जन्म को प्राप्त होता है। अन्तकाल के चिन्तन के अनुसार गति हो जाती है। "अन्त मति सो गति"। यह हुआ भगवान का कानून। भगवान कहते है कि अन्तकाल मे मेरे को याद करे तो मेरे को प्राप्त हो जायगा। तो परमात्मा की प्राप्ति के लिये अन्तकाल मे परमात्मा का चिन्तन करे तो परमात्मा की प्राप्ति हो जाय। इसमे दया क्या भरी हुई है? जितने दामो मे कुत्ते की यानि मिले उतने ही दामो मे परमात्मा की प्राप्ति हो जाय। क्या खर्च हुआ बताओ? कुत्ते को याद करते हुए मरो तो कुत्ता बन जाओगे और परमात्मा को याद करते हुए मरो तो परमात्मा की प्राप्ति हो जायगी तो इसमे अपने लिये भगवान ने कोई रियायत नही की। कानून है, इसका कोई भी पालन करलो, और इस कानून मे कितनी दया भर दी। जिस चिन्तन से ८४ लाख योनि मिलती है, उसी चिन्तन से भगवत्प्राप्ति हो जाय, सदा के लिये जन्म मरण मिट जाय। यह कानून है। कानून भी है, दया भी है। इसी तरह से व्यवहार ठीक करने से परमार्थ भी सुधरता है। व्यवहार का काम ठीक करने से परमार्थ नही विगडता। झूँठ, कपट, बेईमानी, धोखेबाजी करते हो तो

श्री हरि

क्रो पर वि य कै ` हो ?

जैसे आप लोग हिसाब सीखते हो तो उस हिसाब का गुर सीख लेते हो तो वह हिसाब सुगमता से हो जाता है। बीकानेरी भाषा मे उसीको उपराडी कहते हैं। उपराडी सीख लेने से हिसाब चट हो जाता है। बगाली भाषा मे उसीको शुभकारी कहते है, वह सीख ले तो हिसाब हो जाता है। ऐसे ही हरेक प्रश्न का एक गुर होता है, उपराडी होती है, उसको आप लोग सीख लो तो प्रश्न का उत्तर स्वत आ जायगा।

प्रश्न आया है कि हम क्रोध पर विजय कैसे पावे ? तो क्रोध पैदा किससे होता है ? गीता ने कहा—'काम से ही क्रोध पैदा होता है'— **'कामात्क्रोधोऽभिजायते (२/६२)**। तो वह काम (कामना) क्या है ? मनुष्य ने यह समझ रखा है कि 'धन, सम्पत्ति,' वैभव आदि की कामना होती है'—यह भी सब कामना ही है, पर मूल—असली कामना क्या है ? 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नही होना चाहिये'— यह जो भीतर की भावना है, इसका नाम कामना है।

आप पहले यह पकड लेते हो कि 'ऐसा होना चाहिये और वह नही होगा तो क्रोध आ जायगा, कोई वैसा नही करेगा तो, क्रोध आ जायगा। 'ऐसा नही होना चाहिये' और कोई वैसा करेगा या उससे विपरीत कहेगा तो क्रोध आ जायगा। तो ऐसा होना चाहिये और ऐसा नही होना चाहिये— यही क्रोध का खास कारण है।

ऐसा होना चाहिये और ऐसा नही होना चाहिये—इस कामना मे कोई फायदा नही हैं; क्योकि दुनियामात्र हमारे को पूछकर करेगी क्या ? हमारे मन के अनुसार ही करेगी क्या ? आप अपनी स्त्री, अपना पुत्र, अपना नौकर आदि से चाहते है 'कि ये हमारा कहना करें' तो क्या उनके प्राण नही हैं ? क्या उनकी कोई धारणा नही है ? उनकी कोई कामना, चाहना नही है ? ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ—ऐसा उनके मन मे नही है क्या ? अगर उनका मन इससे रहित है, तब तो वे आप कहे, वैसा कर देगे, पर उनके मन मे भी जो 'ऐसा करूँ और ऐसा न करूँ' ऐसी दो बाते पडी है तो वे आपकी ही कैसे मान ले ? आपकी ही वे मान ले तो फिर आप भी उनकी मान लो। जब आप भी उनकी मानने के लिये तैयार नही हैं तो फिर अपनी बात मनवाने का आपको क्या अधिकार है ? इस वास्ते 'ऐसा होना चाहिये और ऐसा नही होना चाहिये'—यह भाव मन मे आ जाय तो 'ये ऐसा ही करें' अपना यह आग्रह छोड दो। कारण कि इस आग्रह मे कारण अभिमान ! अर्थात् मैं बडा हूँ तो इनको मेरी बात माननी चाहिये'—यह बडप्पन का अभिमान ही खास कारण है, और वैसा न करने से अभिमान ही क्रोधरूप से हो जाता है।

अगर आप शान्ति चाहते हो तो अभिमान को मिटाओ; क्योकि अभिमान सम्पूर्ण आसुरी सम्पत्ति का मूल है। अभिमानरूपी बहडिया की छाया मे आसुरी सम्पत्तिरूप कलियुग रहता है आसुरी सम्पत्ति के क्रोध, लोभ, मोह, मद, ईर्ष्या, दम्भ, पाखण्ड आदि जितने अवगुण है, वे सब अभिमान के आश्रित रहते है क्योकि अभिमान उनका राजा है। उसको आप छोडते नही तो क्रोध कैसे छूट जायगा ! इस वास्ते उस अभिमान को छोड दो।

छोडने का उपाय क्या है ? ये जो आपका कहना नही करते, वे तो आपके अभिमान को दूर करते है और वे आपका कहना करते हैं तो वे आपके अभिमान को पुष्ट करते हैं— यह बात आपके जचती है कि नही ? जो कहना नही करते, वे आपका जितना उपकार करते है, जितना हित करते हैं, कहना करने वाले ऐसा हित, उपकार नही करते। अगर आप अपना हित चाहते हो, तो आपके अभिमान मे टक्कर लगे, उतना ही बढिया है अर्थात् वे कहना न करें, उतना ही बढिया है। कहना न करने मे आपके लाभ हैं, हानि नही है। अभिमान पुष्ट करने के लिये वे बढिया हैं, जो कहना करते हैं परन्तु आपका अभिमान दूर करने के लिए वे बढिया हैं, जो कहना नही करते हैं। इस वास्ते आपको तो उनका उपकार मानना चाहिये कि 'वास्तव मे हमारा हित इस बात मे है।

यद्यपि वे जानकर के हित नही करते है कि भाई, तुम्हारा अभिमान दूर हो जाय, इस वास्ते हम आपका कहना नही करेंगे तथापि आपके तो फायदा ही हो रहा है, वे आपके अभिमान को दृढ नही कर रहे है अर्थात् आपका अभिमान दृढ नही हो रहा है। आप अपना हित चाहते हो कि अहित चाहते हो ? कल्याण चाहते हो कि पतन चाहते हो ? अगर आप कल्याण चाहते हो तो कल्याण आपका निरभिमान होने से है और निरभिमान आप तभी होगे, जब आपका कहना कोई नही मानेगा। अगर कहना मानता रहेगा तो आपका कहना सब जगह डटा रहेगा और यही अभिमान है, यही आसुरी सम्पत्ति है—'**दम्भो दर्पोऽभिमानश्च** क्रोध, (१६/४) तो जो आपका कहना नही मानते, वे आप पर बडी भारी कृपा कर रहे हैं कि आपकी आसुरी सम्पत्ति हटाकर आपमे दैवी सम्पत्ति ला रहे है।

अब प्रश्न आया है कि कहना नही मानने से तो बालक उद्दण्ड हो जायेंगे ? वे उद्दण्ड हो जायेंगे और आप अभिमानी हो जायेंगे अर्थात् वे आपका कहना नहीं मानते तो उद्दण्ड हो जायेंगे और आपका कहना करेंगे तो आप अभिमानी हो जायेंगे—इन दोनो पर विचार करो। आप नही रहो तो मन-मानी करके उद्दण्ड तो फिर भी हो जायेंगे, परन्तु उनके बिना आपका अभिमान दूर कैसे होगा ? उद्दण्ड तो आपके बिना हो जायेंगे, पर आपका अभिमान तो उनके बिना दूर नहीं होगा। इस वास्ते आपको अभिमान तो पहले दूर कर ही लेना चाहिये।

दूसरी बात यह है कि आप उन पर रौब नहीं जमाओगे तो आपकी सौम्यावस्था और निरभिमान-अवस्था का असर उन पर पड़ेगा तो वे उद्दण्ड नहीं होंगे, ठीक हो जायेंगे। आप कह दो कि भाई, ऐसा काम नही करना चाहिये फिर भी वे वैसा ही करें तो आप शान्ति से चुप-चाप रहो। कारण कि वे उद्दण्डता करेंगे तो उनको फल मिलेगा। फल मिलने मे उनको चेत होगा फिर उनकी उद्दण्डता मिटेगी। उनको चेत होकर जो उद्दण्डता मिटेगी, वह उद्दण्डता आपके कहने से नही मिटेगी, क्योंकि उसके मन में तो अपनी बात भरी रहेगी और बात ऊपर से कलई जैसे रहेगी, वह कलई उतर जायगी तो इससे उद्दण्डता कैसे मिटेगी ? उद्दण्डता मिटाने का उपाय यही है कि आप अपने अभिमान को दूर करो।

वह रहना क्या है ? आपके कर्त्तव्य का आप पर दायित्व है। आपका कर्त्तव्य क्या है ? स्त्री माने, न माने, पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? पुत्र माने, न माने, पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? भाई माने, न माने, पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? मा-बाप माने, न माने, पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? भोजाई और भतीजे माने, न माने, पर आपका क्या कर्त्तव्य है ? आप अपने कर्त्तव्य का ठीक तरह से पालन करे। वे अपना कर्त्तव्य पालन करते है या नही करते—उधर आप देखो ही मत। क्योकि, जब आप उनके कर्त्तव्य को देखते हो कि 'ये उद्दण्ड न हो जाय।' ऐसे समय मे आप अपने कर्त्तव्य से च्युत ही हैं, आप अपने कर्त्तव्य से गिरते हो, क्योकि आपको दूसरो का अवगुण देखने के लिये कर्त्तव्य कहाँ बताया है ? शास्त्रो मे कही भी यह नही बताया है कि तुम दूसरो का अवगुण देखा करो, प्रत्युत यह बताया है कि यह ससार गुणदोष मय है—

सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं देखिअ सो अबिबेक॥
(मानस ७/४१)

दूसरो मे गुण है, उनको तो भले ही देखो, पर अवगुण मत देखो। अवगुण देखोगे तो वे अवगुण आपमे आ जायेगे और अवगुण देखकर के उनको उद्दण्डता से बचाने के लिये क्रोध करते हो तो क्रोध से नही बच सकते। इस वास्ते आप अपना कर्त्तव्य पालन करो। दूसरो का न कर्त्तव्य देखना है और न अवगुण देखना है। हाँ लडका है तो उसको अच्छी शिक्षा देना आपका कर्त्तव्य है, उसको अच्छी बात कहो, इतना तो आपका कर्त्तव्य है, पर वह वैसे ही करे—यह आपका

कर्त्तव्य नही है। यह तो उसका कर्त्तव्य है। उसको कर्त्तव्य बताना—यह आपका कर्त्तव्य नही है। आपका तो सिर्फ इतना ही है कि भाई, ऐसा करना ठीक है, ऐसा करना ठीक नही है। अगर वह कहे—'नही-नही बाबूजी, ऐसे करे, तो कह दो—'अच्छा ऐसे करो ! 'यह बहुत ही बढिया दवाई है। मैं नही कहने योग्य एक बात कह रहा हूँ कि 'अभी इस दवाई का मैं सेवन कर रहा हूँ।' आपको जो दवाई बतायी, यह बहुत बढिया दवाई है—आप कहो—'ऐसा करो' और अगर वह कहे नही हम तो ऐसा करेंगे, अच्छा, ठीक है—ऐसा करो—

रज्जब रोसन कीजिये कोई कहे क्यूँ ही।
हँसकर उत्तर दीजिये हाँ बाबाजी यूँ ही ।।

अन्याय हो, पाप हो तो उसको अपने स्वीकार नही करेंगे। अपने तो शास्त्र के अनुसार बात कह दी और वे नही मानते तो शास्त्र क्या कहता है ? क्या उनके साथ लडाई करो ! या उन पर रोब जमाओ ! आपका तो केवल कहने का अधिकार है—**'कर्मण्येवाधिकारस्ते'** (२/४७) और वे ऐसा ही मान ले—यह फल है, आपका अधिकार नही है—**'मा फलेषु कदाचन'** (२/४७) आपने अपनी बारी निकाल दी, बस। आपकी हुण्डी चढ गयी। कर्त्तव्य तो आपका कहना ही था, करा लेना कर्त्तव्य आपका थोडा ही है ! वैसा करे, यह कर्त्तव्य उनका है। अपने तो कर्त्तव्य समझा देना है। उसने कर्त्तव्य पालन कर लिया तो आपके कल्याण मे कोई बाधा नही और वह नही करेगा तो उसका नुकसान है, आपके तो नुकसान है नही, क्योकि आपने तो हित की बात कह दी। यह बहुत मूल्यवान बात है !

नारायण, नारायण, नारायण।

श्री हरि :

ता होने से दा

मूल मे ममता छोडना चाहते नही। यहाँ ही गलती होती है। ममता छूटती नही– यह बात नही है, आप छोडना चाहते नही। अब छोडने की चाहना पैदा कैसे हो—यह खास प्रश्न है। इसमे आप ध्यान देकर के सुन ले और खूब ठण्डे हृदय से विचार करे कि जिन चीजो के साथ आपकी ममता है अर्थात् अधिक से अधिक शरीर के साथ, इसके बाद कुटुम्बी, धन-सम्पत्ति आदि के साथ जो ममता है तो ये ममतावाली चीजे सदा साथ रहेगी क्या ? जैसे आप पहले किसी शरीर मे थे, तो उस समय शरीर, कुटुम्बी आदि अपने दीखते थे, पर आज उनकी याद भी नही है। तो आज जिनमे आप ममता कर रहे हो, ये चीजे मरने के बाद याद तक नही रहेगी, क्योंकि ये वस्तुएँ तो छूटेगी ही। वस्तुएँ तो छूटेंगी, परन्तु उनमे आपका जो राग है, ममता है—ये मरने के बाद भी आपके साथ रहेगे। तो यह ममता सिवाय जन्म-मरण, दु ख देने के कुछ लाभ देने वाली नही है।

पदार्थ छूटेगे, ममता वाली वस्तुएँ छूट जायेगी, परन्तु ममता भीतर बनी रहेगी। वह ममता अगाडी आसक्ति पैदा करके कामना पैदा करके बन्धन मे ही बन्धन मे डालेगी, इसके सिवाय कुछ नही। जब छूटने वाली वस्तुओ से ममता छोडनी है तो इसमे जोर क्या आवे ? जरूर छूटने वाली वस्तुओ से ममता छोडने से निहाल हो जाओगे, मुक्त हो

जाओगे और ममता रहते हुए मौत आवेगी तो भी वस्तुओं के साथ सम्बन्ध-विच्छेद होगा तथा त्याग करने से भी वस्तुओं से सम्बन्ध-विच्छेद होगा। परन्तु मौत मे पराधीनता है और त्याग मे स्वाधीनता है। मौत मे अशान्ति है और त्याग मे शान्ति है। मौत मे बाहर से सम्बन्ध छूट जाता है, पर भीतर से ममता आसक्ति रहने से महान दु ख होगा और त्याग मे भीतर से सम्बन्ध छूट जाता है तो बाहर से सम्बन्ध छूटने पर भी हानि नही है, प्रत्युत महान् आनन्द होगा।

मेरी तो एक ही प्रार्थना है कि आप इन बातो पर दलील दो, सुनो और विचार करो। क्योकि ममता रखने से हानि ही हानि है और ममता छूटने से आपके किसी तरह की हानि नही होगी, दु ख नही होगा और सुख मे कमी नही होगी। जैसे, इस मकान को अपने सब भाई अपना नही मानते तो क्या इसमे बैठने का सुख अपने को नही मिलता है। क्या यहाँ के प्रकाश का सुख हमारे को नही मिलता है ? यहाँ पखे चलते हैं, इनसे हमारे को सुख नही मिलता है क्या ? यहाँ पर माइक पर बोलते हैं, सुनते है तो इससे हमारे को सुख नही मिलता है क्या ? तात्पर्य यह हुआ कि अपनापन छूटने पर भी सुख मिलना जायगा नही ! क्योकि अपनी ये चीजे नही हैं और सुख ले रहे हे तो सुख लेने पर भी हम निर्लेप है अर्थात् यहाँ से चल दे, पखा टूट जाय, बिजली जल जाय तो अपने कोई चिन्ता नही। फरक क्या है ? ममता नही। जिसकी ममता है, उसके चिन्ता लग जायगी, खलबली मच जायगी। खलबली मचाने के, अगाडी जन्म देने के सिवाय ममता से कोई-सा भी फायदा नही है और नुकसान कोई-सा ही बाकी नही है। यह बनिया जाति बडी स्वार्थी होती है।

यह नुकसान के तो नजदीक नही जाती और नफा इनको अच्छा लगता ही है। तो ममता छोडने से नुकसान कुछ नही है और रखने से सभी नुकसान है, फायदा कोई-सा नही है। क्योकि, पहले यह चीजे थी नही और अगाडी ये रहेगी नही। इनमे झूठी ममता कर लेते है तो बार-बार दु ख पाना पडेगा। इस बात को आप समझो और शका हो तो अभी पूछो !

आप जिसको अपना मानते हो; कुटुम्ब को, धन को, घर को, शरीर को अपना मानते हो कि ये मेरे है। तो क्या ये पहले मेरे थे ? और क्या फिर अपने रहेगे ? थे नही और रहेगे नही। दूसरी बात, आप जिनमे ममता रखते हो, उनको बदल सकते हो क्या ? 'छोरा मेरा है' तो उसको भी अपनी आज्ञा के अनुसार चला सकते हो क्या ? अपने शरीर को भी चाहे जैसा स्वस्थ रख सकते हो क्या ? कम-से-कम उसको मरने तो दोगे ही नही ? धन आपके पास है, उसको रख लोगे ? है हाथ की बात ! शरीर बीमार भी हो जायगा, मर भी जायगा छोरा भी नही मानेगा। धन भी चला जायगा। ममतावाली वस्तुओ को रखने की ताकत किसी की हो, तो बोलो ! तात्पर्य यह हुआ कि पहले थी नही, अगाडी रहेगी नही और अभी भी उसके ऊपर आपका आधिपत्य चलता नही। उसके परिवर्तन करने मे आप समर्थ नही। अनुकूल बनाने मे समर्थ नही, रखने मे समर्थ नही। पहले भी अपनी थी नही और छूट जायगी जरूर—यह पक्की बात है।

हरएक बात मे सन्देह होता है। आप ऐसा कर लेगे ? ऐसा हो भी जाय और न भी हो। अमुक जगह जाना है, अमुक आदमी से मिलना है, तो क्या मिल लोगे ? मिल भी सकते हैं और नही भी। बेटे का ब्याह कर दिया तो पोता जनमेगा ?

पता नही ! होगा और नही भी होगा। इस प्रकार हरएक काम मे होगा और नही भी होगा—ऐसा होता है, पर एक दिन मरना होगा और नही भी होगा—इसमे विकल्प है क्या? हो भी सकता है और नही भी, मरे चाहे, न भी मरे—ऐसा हो सकता है क्या? जब मरना जरूरी है तो मरने पर ममता वाली सब चीजे छूटेगी तो अपनापन—ममता पहले छोड दो, तो निहाल हो जाओ। अन्त मे छूटेगी तो सही ! क्यो माजनो गमाओ अपनो, चोरी बेइज्जती के सिवाय क्या मिलेगा? बताओ आप लोग इतने बैठे हो? रखने से फायदा होगा, वह बताओ और छोडने से नुकसान हो, वह बताओ?

आप कहोगे कि ममता के बिना कुटुम्ब का पालन कैसे होगा? ममता के बिना पालन ज्यादा होता है और बढिया होता है। एक बात याद आ गयी। शर्म की बात है। वह साधु हो चाहे, ब्राह्मण हो, आपका हित ममता रखने वाला ज्यादा कर सकता है या ममता न रखने वाला ज्यादा कर सकता है—ठण्डे हृदय से आप सोचे। आपको चेला बना ले कि यह मेरा चेला है, शिष्य है—ऐसा करके आपके साथ विचार करे और एक चेला न बनकर आपको बात कहे तो ममता वाला ज्यादा लाभ देगा कि बिना ममता वाला। यह आप सोचलो आपके अकल मे आती होगी, नही तो शका कर लेना।

स्वार्थवाला सच्ची बात कहेगा कि बिना स्वार्थ वाला? और सुधार किस बात से होगा। आप भी समझते हो कि आपका हित सम्बन्ध जोडने मे है कि सम्बन्ध तोडने मे। ममता रखने मे सिवाय हानि के कुछ नही है और छोडने मे सिवाय लाभ के कुछ नही है, लाभ ही लाभ है कोरा। इन बातो पर विचार करो?

'नारायण, नारायण, नारायण'

श्री हरि :

सत्सं एवं संसार का

प्रश्न –साधन, भजन, सत्सग करते हैं फिर भी ससार के प्रवाह का असर पड जाता है । क्यो ?

उत्तर –देखो भैया ! मैं एक बात कहता हूँ उसकी तरफ ध्यान दें । ससार का प्रवाह किस पर पडता है ? गहरा विचार करना । ससार का प्रभाव ससार पर ही पडता है । स्वरूप पर ससार का प्रभाव नही पडता । प्रभाव पडा और अभी प्रभाव नही रहा । प्रभाव निवृत्त हो गया । प्रभाव का असर नही हुआ । ये ज्ञान है कि नही । इसका उत्तर दो । और एक बात मन मे आती है कि ये सत्सग मे तो जच जाता है पीछे नही रहता । पीछे मत रहो । सत्सग मे जच गई है न । तो पीछे रहना तुम देखना चाहते हो यही एक बहुत बडी गलती है । उसका सुधार कर लो अभी । सुधार यह है कि यह व्यवहार मे नही रहता तो अन्त. करण मे नही रहता, और अन्त करण मे वृत्तिया तो व्यवहार होने से होगी । अगर वृत्तिया न हो तो व्यवहार कैसे होगा ? भोजन ही कैसे होगा ? बोलना भी कैसे होगा ? चलना भी कैसे होगा ? कुछ भी बोलना न हो तो कैसे होगा ? तो व्यवहार मे तो व्यवहार की वृत्तिया होगी । पर व्यवहार और एकान्त दोनो का ज्ञान किसी को होता है कि नही होता है । ज्ञान जिसको होता है उस ज्ञान मे व्यवहार और एकान्त है । इस बात को समझ लो तो निहाल हो जाओ । अभी-अभी-अभी । मानो व्यवहार और व्यवहार

रहित अक्रिय अवस्था। अक्रिय और सक्रिय दो है। दोनों ही ये प्रवृत्ति है। अक्रिय भी प्रवृत्ति है और सक्रिय भी प्रवृत्ति है। क्योकि ये सापेक्ष है। ये तो तुमने सुना ही होगा कि सक्रिय प्रवृत्ति है और अक्रिय प्रवृत्ति नही है, परन्तु अक्रिय भी प्रवृत्ति है और सक्रिय भी प्रवृत्ति है। अक्रिय और सक्रिय जिस प्रकाश मे प्रकाशित होते है उस प्रकाश मे प्रवृत्ति नही है। वह प्रकाश एकान्त मे बैठे हुए साफ दीखता है, व्यवहार करते हुए नही दीखता है। तो न दीखने पर भी व्यवहार मे प्रकाश तो रहता ही है। अगर नही रहे तो प्रकाश का ज्ञान किसको हो रहा है ? प्रवृत्ति भी तो जानने मे आती है। आती है न ? तो जानना पन तो रहता है कि नही ? केवल जानना है उसमे प्रवृत्ति निवृत्ति दोनो नही है। बडी सीधी बात है, बहुत ही सरल बात है कि प्रवत्ति और निवृत्ति दोनो जिससे प्रकाशित होते हैं, उसमे प्रवृत्ति निवृत्ति कुछ नही है। न प्रवृत्ति है न निवृत्ति है। समझ मे आ गया न ? तो इसमे तुम डटे रहो। वृत्तियो का एक रूप देखना छोड दो आज से। वृत्तिया एक रूप बनी रहे। ये आज तुम छोड दो, मेरे कहने से। ये जब तक पकडे रहोगे, तब तक तुम्हे सन्तोष नही होगा। और ये आज ही छोड दो। अभी-अभी। व्यवहार मे कैसे ही रहो। पीछे परमार्थ मे रहो। क्योकि वास्तव मे नित्य रहने वाली चीज तो प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो का प्रकाशक है। तो निवृत्ति को क्यो इतना महत्त्व देते हो। वास्तविक तो प्रकाश है। दोनो जिस प्रकाश से प्रकाशित होते है, वह प्रकाश वास्तविक है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो अवास्तविक है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो सापेक्ष हैं। प्रवृत्ति की दृष्टि से निवृत्ति है और निवृत्ति की दृष्टि से

प्रवृत्ति है। वास्तव मे जो प्रकाश है उसमे न निवृत्ति है न प्रवृत्ति है। ठीक है न ये ? तो इसमे तुम्हारी स्थिति है। मेरे कहने से मान लो। और ये जो बहम है कि प्रवृत्ति जब तक रहती है और बीच मे जो असर पडता है, तब तक हम तो ठीक नही हुए, ये छोड दो। ध्यान देना बात को। किसके द्वारा छूटता है ? कि निवृत्ति आई, प्रवृत्ति गई। निवृत्ति गई, प्रवृत्ति आई।

कहा गई, कहा आई बताओ। प्रवृत्ति-निवृत्ति का अभाव हुआ कि नही ? अभाव हुआ तो द्वारा की जरूरत क्या ? द्वारा, एक ऐसा आग्रह छोड दो। किसके द्वारा कि तुम्हारे द्वारा। तुम खुद के द्वारा ऐसी वृत्ति निरन्तर रहे ये आग्रह छोड दो। इसमे हानि नही होगी। बहुत साफ है इसमे सन्देह नही है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो प्रकाशित होती हैं स्वत और ये होती रहे। अपने कोई मतलब नही है। दुनिया मात्र मे प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है कि नही ? जागृत मे काम करते है। नीद मे काम नही करते। दीखता है न। उससे तुम्हारे क्या फर्क पडता है ? दुनिया मे जो प्रवृत्ति होती है उससे तुम्हारे मे फर्क पडता है क्या ? तुम्हारे प्रकाश मे जो स्वय प्रकाश स्वरूप है उसमे फर्क नहीं पडता है न। तो इसकी चिन्ता क्यो करते हो ? ये जो ससार की प्रवृत्ति निवृत्ति है वही तुम्हारे शरीर की प्रवृत्ति निवृत्ति है। दोनो बिल्कुल एक धातु की है।

ससार के प्रभाव मे बह जाते है जिससे सन्तोष नही होता। हा, तो गलती करते हो। सन्तोष क्यो नही होता है ? इसका कारण है कि आप समझते हैं कि अन्त करण निर्विकार रहे। ये आपने पकड लिया। अन्त करण निर्विकार नही होता, ये पकड छोड दो। अन्त करण निर्विकार रहना

चाहिए, ये छोड दो। निर्विकार कैसे रहेगे, जब यह कार्य है प्रकृति का ? ये निर्विकार कैसे रहेगा ? इसमे तो विकार होगा।

प्रश्न —महाराज जी ! एक बात कहूँ, आप कहते है न कि ये छोड दो। तो एक भय सा लगता है। ऐसा विचार आता है कि छोडने से कही मेरा पतन न हो जाय।

उत्तर —इस वास्ते मैंने बार-बार कहा कि मेरे कहने से छोड दो। यह क्यो कहा ? क्योकि भय है तुम्हे। तुम्हारे भय का असर है मेरे पर। तुम भयभीत हो रहे हो। इस वास्ते कहता हूँ तुम डरो मत। जब तक ये पकड है तब तक वास्तविक स्थिति नही होगी। ये वास्तविक स्थिति मे बाधक है। तो ये पकड ही बाधक है। और कोई बाधक है नही। प्रकाश मे पतन होता ही नही। प्रवृत्ति निवृत्ति दोनो मे प्रकाश समान रहता है। ये बताओ उसमे फर्क पडता है क्या ? उसमे फर्क नही पडता तो उसका पतन कैसे हो जायेगा ? तुम मानते हो अन्त करण मे निर्विकारता आ जाय। अगर आ जाय तो—

प्रकाशं च प्रवृत्ति च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांड्क्षति।। गीता १४।२२

ये कहना कैसे बनता ? प्रकाश प्रवृत्ति और मोह अगर न होता, तो 'न द्वेष्टि सप्रवृत्तानि न निवृतानि काड्क्षति कैसे कहते ?

प्रश्न .—ये तो महाराज जी उन महापुरुषो की बात है जिनको साक्षात्कार हो गया।

उत्तर:—तो वे महापुरुष हम ही है। वे महापुरुष अलग नही हैं। हम ही महापुरुष हैं। प्रकाश का नाम ही महापुरुष है। डरो मत इसमे। विल्कुल डर नही। ये जो सामान्य प्रकाश है इस स्थिति वाले को ही महापुरुष कहते है। महापुरुष कहो चाहे ब्रह्म कहो। उस सामान्य प्रकाश मे

प्रवृत्ति है। वास्तव मे जो प्रकाश है उसमे न निवृत्ति है न प्रवृत्ति है। ठीक है न ये ? तो इसमे तुम्हारी स्थिति है। मेरे कहने से मान लो। और ये जो वहम है कि प्रवृत्ति जब तक रहती है और बीच मे जो असर पडता है, तब तक हम तो ठीक नही हुए, ये छोड दो। ध्यान देना बात को। किसके द्वारा छूटता है ? कि निवृत्ति आई, प्रवृत्ति गई। निवृत्ति गई, प्रवृत्ति आई।

कहा गई, कहा आई बताओ। प्रवृत्ति-निवृत्ति का अभाव हुआ कि नही ? अभाव हुआ तो द्वारा की जरूरत क्या ? द्वारा, एक ऐसा आग्रह छोड दो। किसके द्वारा कि तुम्हारे द्वारा। तुम खुद के द्वारा ऐसी वृत्ति निरन्तर रहे ये आग्रह छोड दो। इसमे हानि नही होगी। वहुत साफ है इसमे सन्देह नही है। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनो प्रकाशित होती हैं स्वत और ये होती रहे। अपने कोई मतलब नही है। दुनिया मात्र मे प्रवृत्ति और निवृत्ति होती है कि नही ? जागृत मे काम करते है। नीद मे काम नही करते। दीखता है न। उससे तुम्हारे क्या फर्क पडता है ? दुनिया मे जो प्रवृत्ति होती है उससे तुम्हारे मे फर्क पडता है क्या ? तुम्हारे प्रकाश मे जो स्वय प्रकाश स्वरूप है उसमे फर्क नही पडता है न। तो इसकी चिन्ता क्यो करते हो ? ये जो ससार की प्रवृत्ति निवृत्ति है वही तुम्हारे शरीर की प्रवृत्ति निवृत्ति है। दोनो बिल्कुल एक धातु की है।

ससार के प्रभाव मे बह जाते है जिससे सन्तोष नही होता। हा, तो गलती करते हो। सन्तोष क्यो नही होता है ? इसका कारण है कि आप समझते हैं कि अन्त करण निर्विकार रहे। ये आपने पकड लिया। अन्त करण निर्विकार नही होता, ये पकड छोड दो। अन्त.करण निर्विकार रहना

चाहिए, ये छोड दो। निर्विकार कैसे रहेगे, जब यह कार्य है प्रकृति का ? ये निर्विकार कैसे रहेगा ? इसमे तो विकार होगा।

प्रश्न –महाराज जी! एक बात कहूँ, आप कहते है न कि ये छोड दो। तो एक भय सा लगता है। ऐसा विचार आता है कि छोडने से कही मेरा पतन न हो जाय।

उत्तर –इस वास्ते मैंने बार-बार कहा कि मेरे कहने से छोड दो। यह क्यो कहा ? क्योकि भय है तुम्हे। तुम्हारे भय का असर है मेरे पर। तुम भयभीत हो रहे हो। इस वास्ते कहता हूँ तुम डरो मत। जब तक ये पकड है तब तक वास्तविक स्थिति नही होगी। ये वास्तविक स्थिति मे बाधक है। तो ये पकड ही बाधक है। और कोई बाधक है नही। प्रकाश मे पतन होता ही नही। प्रवृत्ति निवृत्ति दोनो मे प्रकाश समान रहता है। ये बताओ उसमे फर्क पडता है क्या ? उसमे फर्क नही पडता तो उसका पतन कैसे हो जायेगा ? तुम मानते हो अन्त करण मे निर्विकारता आ जाय। अगर आ जाय तो–

प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव।
न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि कांङ्क्षति॥ गीता १४।२२

ये कहना कैसे बनता ? प्रकाश प्रवृत्ति और मोह अगर न होता, तो 'न द्वेष्टि सप्रवृत्तानि न निवृतानि काङ्क्षति कैसे कहते ?

प्रश्न –ये तो महाराज जी उन महापुरुषो की बात है जिनको साक्षात्कार हो गया।

उत्तर –तो वे महापुरुष हम ही है। वे महापुरुष अलग नही हैं। हम ही महापुरुष हैं। प्रकाश का नाम ही महापुरुष है। डरो मत इसमे। बिल्कुल डर नही। ये जो सामान्य प्रकाश है इस स्थिति वाले को ही महापुरुष कहते हैं। महापुरुष कहो चाहे ब्रह्म कहो। उस सामान्य प्रकाश मे

क्या फर्क पडता है ? तो सामान्य ब्रह्म है वह एक है। एक तो भय छोड दो। एक अगाडी कुछ विलक्षणता होगी, इस आशा को छोड दो। ये दो छोड दो। ये दो ही बाधक है असली। निषिद्ध आचरण की इच्छा हो जाती है। तो निषिद्ध आचरण छूट जायेगा। ये सुनकर डर लगता है न। तो छोडते डर लगता है इससे सिद्ध होता है कि निषिद्ध आचरण को आपने महत्व दिया। और महत्व दे करके छोडते हैं तो कैसे छूटेगा ? आदर आपने कर दिया उसका। उपेक्षा करो। एक करना, एक न करना दो चीज हुई। और एक उपेक्षा तीसरी चीज हुई। क्रिया मे तो विधि करना है, निषिद्ध नही करना है। परन्तु भीतर मे विधि और निषेध दोनो से उदासीन रहो। क्यो कि विधि और निषेध दोनो दीखते है किसी प्रकाश मे। उस प्रकाश का सबध न विधि के साथ है न निषेध के साथ है। विधि का सबध निषेध के साथ है। निषेध निवृत्ति करने के लिए विधि है। विधि रखने के लिए विधि नही है। **इस वास्ते विधि निषेध भय और आशा ये दोनो छोड दो।** ख्याल मे आयी कि नही बात ? मेरी बात समझ मे आयी कि नही ? विधि और निषेध मे विधि का लोभ है और निषेध का भय है। और भय और लोभ जब तक रहेगे, तब तक आपकी स्वरूप मे स्थिति नही होगी। और ये भय और लोभ है इसकी बेपरवाही कर दो। ये छूट जायेंगे। बेपरवाही करो केवल बेपरवाही। आ गया भय तो आ गया। लोभ हो गया तो हो गया। आपकी अवस्था मे कहता हू हर एक के लिए मैं नही कहता हू। हर एक इस बात को समझेगा नही, उल्टा असर हो जायेगा। और आपके उल्टा असर नही होगा, नही होगा, नही होगा। मैं धोखा देता हू क्या ? बताओ ? क्यो कि ये जब समझ मे आ गई कि विधि और

निपेध ये करना चाहिए और ये नही करना चाहिए, ये दोनो होते है और मिटते हैं, आते है और जाते है, और आने-जाने वालो की रहने वाले पर कोई जिम्मेवारी नही है, रहने वाले पर कोई असर नही है, रहने वाले मे कुछ बनता-बिगडता नही है, न निषेध से बनता है न विधि से बनता है। और न निपेध से विगडता है न विधि से बिगडता है उसका बनता विगडता है ही नही, तो आप पर असर कैसे पडेगा ?

उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ।। १४।२३

वह विचलित होता ही नही है। **'गुणैर्यो न विचाल्यते, योऽवतिष्ठति नेङ्गते'** मानो ज्यो का त्यो रहता है ये अर्थ हुआ इसका। भय और आशाये दो छोडो। भय और आशा मे ससार मात्र बधा है। किसी प्रकार का न भय हो न किसी प्रकार की आशा हो। जितना चुप रह सको, चुप रहो। और है नाथ! मेरे से नही छटता कहते रहो। कह सकते हो कि नही ? जितना मिनट चुप रह सको चुप रह जाओ इस शरणागति मे और चुप रहने से बडी भारी ताकत है। तो आप निर्बलो को बल आ जायेगा। और वह कार्य हो जायेगा। आप मे तो आ जायेगा बल और काम हो जायेगा सिद्ध। आपमे वल आयेगा निर्विकार रहने से। और सिद्ध होगा शरण होने से। जची कि नही ? ठीक वैठी कि नही वात ? चुप होने से शक्ति आती है। ये वात अनुभव सिद्ध है कि वोलते-वोलते वोलना वन्द हो जायेगा। पडे रहो वोलने की शक्ति आ जायेगी। शक्ति स्वत आती है निष्क्रिय होने से। और सक्रिय होने से शक्ति नष्ट होती है। जितने भोग सग्रह के लिए काम करते हैं उनमे थकावट होती है। नीद लेने से थकावट दूर हो जाती है शक्ति आती

है। तो निष्क्रिय होने से करने की शक्ति आती है ये तो अनु-भव है न ? तो निष्क्रिय रहने से शक्ति आ जायेगी। और हे नाथ ! ऐसा कहने से काम सिद्ध हो जायेगा। रामबाण है। ये ? ढिया। इसमे सन्देह हो तो बोलो। तो शरण होकर निसन्देह हो जाओ। ये तुम्हारा इलाज असली है। इस अवस्था मे चुप होने मे परिश्रम नही करना है। कोई क्रिया हो गई तो हो गई, नही हुई तो नही हुई। अपने मतलब नही। अपनी तरफ से कोई क्रिया न तो करो और न ही ना करो। दोनो से उदासीन रहो। क्रिया हो तो होती रहे। अभी-अभी सिद्धि हो गई तत्वज्ञ जीवन-मुक्त महापुरुष जिसको कहते है उसकी।

राम, राम, राम,

मुद्रक अजन्ता प्रिन्टर्स, घी वालो का रास्ता, जयपुर
फोन 44057